॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

छान्दोग्योपनिषद्

[यह उपनिषद् सामवेदकी तलवकार शाखाके अन्तर्गत छान्दोग्य ब्राह्मणका भाग है। छान्दोग्य ब्राह्मणमें कुल दस अध्याय हैं, उनमेंसे पहले और दूसरे अध्यायोंको छोड़कर शेष आठ अध्यायोंका नाम छान्दोग्योपनिषद् है।]

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[इसका अर्थ केनोपनिषद्के आरम्भमें दिया जा चुका है।]

प्रथम अध्याय

[प्रथम खण्ड]

ओंकारकी व्याख्या

ॐरूप इस अक्षरकी उद्गीथ-शब्द-वाच्य परमात्माके रूपमें उपासना करनी चाहिये; क्योंकि यज्ञमें उद्गाता 'ॐ' इस अक्षरका ही सर्वप्रथम उच्चस्वरसे गान करता है। उस ओंकारकी व्याख्या आरम्भ की जाती है॥ १॥

इन चराचर जीवोंका रस—आधार पृथ्वी है, पृथ्वीका रस—आधार अथवा कारण जल है, जलका रस—उसपर निर्भर करनेवाली ओषधियाँ हैं, ओषधियोंका रस—उनसे पोषण पानेवाला मनुष्य-शरीर है, मनुष्यका रस—प्रधान अङ्ग वाणी है, वाणीका रस—सार ऋचा* है, ऋचाका रस साम है और सामका रस उद्गीथ (ओंकार) है। इनमें जो आठवाँ (सबसे अन्तिम) रस उद्गीथरूप ओंकार है, वह समस्त रसोंमें उत्कृष्ट रस है; अतः यह सर्वश्रेष्ठ एवं परब्रह्म परमात्माका धाम—आश्रय है। अब कौन-कौन ऋचा है, कौन-कौन साम है तथा कौन-कौन उद्गीथ है—यह विचार किया जाता है। वाणी ही ऋचा है, प्राण साम है, 'ॐ' यह अक्षर ही उद्गीथ है। जो वाणी और प्राण तथा ऋचा और साम हैं, यह एक ही जोड़ा है—दो नहीं हैं अर्थात् वाणी अथवा ऋचा तथा प्राण अथवा साम एक-दूसरेके पूरक हैं। वाणी और प्राणका अथवा ऋचा और सामका यह जोड़ा ॐरूप इस अक्षरमें भलीभाँति संयुक्त किया जाता है। जिस समय स्त्री और पुरुष आपसमें प्रेमपूर्वक मिलते हैं, उस समय वे अवश्य ही एक-दूसरेकी कामना पूर्ण करते हैं। इसी प्रकार यह वाणी और प्राणका जोड़ा जब ओंकारमें लगाया जाता है, तब वह सदाके लिये पूर्णकाम—कृतकृत्य हो जाता है। इस रहस्यको जाननेवाला जो कोई उपासक इस उद्गीथस्वरूप अविनाशी परमेश्वरकी उपासना करता है, वह निश्चय ही सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति करानेमें समर्थ होता है॥ २—७॥

यह ॐरूप अक्षर अनुज्ञा अर्थात् अनुमतिसूचक भी है; क्योंकि मनुष्य जब किसी बातके लिये अनुमति देता है तब 'ओम्' इस शब्दका ही उच्चारण करता है। किसीको कुछ करनेके लिये जो यह अनुज्ञा—अनुमति देना है, वही समृद्धि—बड़प्पनका लक्षण है; अतः इस

---

* जिनके अक्षर, पाद और समाप्ति—ये नियत संख्याके अनुसार होते हैं, उन मन्त्रोंको 'ऋक्' कहते हैं; जिनके अक्षर आदिकी कोई नियत संख्या या क्रम न हो, उन्हें 'यजुः' कहते हैं। 'ऋक्' संज्ञक मन्त्रोंमें ही जो गीतप्रधान हैं—गाये जा सकते हैं, उनकी 'साम' संज्ञा है। साम-मन्त्रोंद्वारा विभिन्न देवताओंकी स्तुति की जाती है।

रहस्यको जाननेवाला जो साधक उद्गीथके रूपमें उस परम अक्षर परमात्माकी उपासना करता है, वह अपनी और दूसरोंकी समस्त कामनाओं—भोग्यवस्तुओंको बढ़ानेमें समर्थ होता है। ओंकारसे ही ऋक्, यजुः और साम—ये तीनों वेद अथवा इन तीनों वेदोंमें वर्णित यज्ञादि कर्म आरम्भ होते हैं। इस ओंकाररूप अक्षरकी अर्थात् इसके अर्थभूत अविनाशी परमात्माकी पूजा—प्रीतिके लिये, इसीकी महिमा (प्रभाव) एवं रस (शक्ति) से 'ॐ' इस प्रकार कहकर 'अध्वर्यु' नामक ऋत्विक् 'आश्रावण' करता है—मन्त्र सुनाता है, 'ॐ' यों कहकर ही 'होता' नामका ऋत्विक् 'शंसन' करता है—मन्त्रोंका पाठ करता है और 'ॐ' यों कहकर ही 'उद्गाता' उद्गीथका गान करता है। जो इस रहस्यको इस प्रकार जानता है और जो नहीं जानता, दोनों इस ओंकारसे ही यज्ञादि कर्म करते हैं; परंतु जानना और न जानना दोनों अलग-अलग हैं। साधक जो कुछ भी श्रद्धापूर्वक, उसके वास्तविक रहस्यको बतानेवाली विद्याके द्वारा अर्थात् उसके तत्त्वको समझकर करता है, वही अधिक-से-अधिक सामर्थ्ययुक्त होता है। यही इस ओंकाररूप अक्षरकी प्रसिद्ध व्याख्या—उसकी महिमाका वर्णन है॥ ८—१०॥

द्वितीय खण्ड

ओंकारकी आध्यात्मिक उपासना

यह प्रसिद्ध है कि प्रजापतिकी संतान—देवता और असुर दोनों जब आपसमें लड़ रहे थे, उसी समय देवताओंने उद्गीथ (ओंकार) को ध्येय बनाकर उसकी उपासनारूप यज्ञ किया। उनका उद्देश्य यह था कि 'इस अनुष्ठानद्वारा हमलोग इन असुरोंको परास्त कर देंगे।' उन्होंने नासिकामें रहनेवाले घ्राणेन्द्रियरूप प्राणको उद्गीथ बनाकर उपासना की। तब उस घ्राणेन्द्रियको असुरोंने राग-द्वेषरूप पापसे युक्त कर दिया। घ्राणेन्द्रिय राग-द्वेषसे युक्त है, इसीलिये उसके द्वारा यह जीव अच्छी और बुरी—दोनों प्रकारकी गन्धको ग्रहण करता है। तदनन्तर उन प्रसिद्ध देवताओंने उद्गीथरूपसे वाणीकी उपासना की। असुरोंने उसे भी राग-द्वेषसे कलुषित कर दिया। वाणी राग-द्वेषसे कलुषित है, इसीलिये उसके द्वारा मनुष्य सत्य और झूठ दोनों बोलता है। इसके बाद देवताओंने उद्गीथरूपसे नेत्रकी उपासना की। उसे भी असुरोंने राग-द्वेषसे मलिन कर दिया। चक्षु-इन्द्रिय राग-द्वेषसे मलिन हो रही है, इसीलिये उसके द्वारा मनुष्य देखनेयोग्य और न देखनेयोग्य—शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके दृश्य देखता है। अबकी बार देवताओंने श्रोत्रकी उद्गीथरूपसे उपासना की। उसे भी असुरोंने राग-द्वेषसे दूषित कर दिया। श्रोत्र-इन्द्रिय राग-द्वेषसे दूषित है, इसीलिये मनुष्य उसके द्वारा सुननेयोग्य और न सुननेयोग्य—दोनों प्रकारके शब्द सुनता है। फिर देवताओंने मनकी उद्गीथरूपसे उपासना की। उसे भी असुरोंने राग-द्वेषसे अभिभूत कर दिया। मन राग-द्वेषसे अभिभूत है, इसीलिये उसके द्वारा मनुष्य मनमें लानेयोग्य और मनमें न लानेयोग्य—दोनों प्रकारके संकल्प करता है। तब देवताओंने जो यह मुख्य प्राण है, उसीकी उद्गीथरूपसे उपासना की। उसे भी असुरोंने राग-द्वेषसे युक्त करना चाहा; परंतु उसके समीप जाते ही वे उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो गये, जैसे खोदे न जा सकनेवाले सुदृढ़ पत्थरसे टकराकर मिट्टीका ढेला चूर-चूर हो जाता है। जिस प्रकार अच्छेद्य पत्थरसे टकराकर मिट्टीका ढेला छिन्न-भिन्न हो जाता है, ठीक वैसे ही वह मनुष्य भी विध्वंस हो जाता है, जो उद्गीथका रहस्य जाननेवालेके विषयमें अहित-कामना करता है तथा जो उसे पीड़ा पहुँचाता है; क्योंकि उद्गीथके रहस्यको जाननेवाला मनुष्य मानो अच्छेद्य पत्थर ही है॥ १—८॥

प्राणके द्वारा मनुष्य न तो सुगन्धका अनुभव करता है और न दुर्गन्धका ही; क्योंकि इसके सम्पर्कमें आकर तो राग-द्वेष नष्ट हो जाते हैं। इसके द्वारा मनुष्य जो कुछ खाता और जो कुछ पीता है, उससे वह मन-इन्द्रियादि अन्य प्राणोंकी भी रक्षा करता है। अन्तकालमें इसीको न पाकर अर्थात् इसके न रहनेपर इसके साथ ही अन्य सब प्राणोंको लेकर जीवात्मा भी शरीरसे उत्क्रमण कर जाता है—उसे छोड़कर अन्यत्र चला जाता है। इसीलिये अन्त-समयमें जीव अपना मुँह अवश्य खोल देता है। यही प्राणकी महिमा है॥ ९॥

यह प्रसिद्ध है कि अङ्गिरा ऋषिने प्राणको ही प्रतीक बनाकर ओंकारस्वरूप परमात्माकी उपासना की थी। अतः लोग इसीको 'आङ्गिरस'—अङ्गिराका उपास्य मानते हैं; क्योंकि यह समस्त अङ्गोंका रस—पोषक है। इसीसे बृहस्पतिने भी प्राणरूपसे उद्गीथकी—ओंकारवाच्य परमात्माकी उपासना की थी। परंतु लोग प्राणको ही 'बृहस्पति' मानते हैं; क्योंकि वाणीका एक नाम बृहती भी है और उसका यह पति—रक्षक है। इसीसे आयास्य नामके प्रसिद्ध ऋषिने भी प्राणके रूपमें उद्गीथकी उपासना की थी। परंतु लोग इस प्राणको ही 'आयास्य' मानते हैं; क्योंकि यह आस्य अर्थात् मुखके द्वारा आता-जाता है। दल्भके पुत्र बक नामक ऋषिने प्राणकी उपासनारूप साधनसे उद्गीथ अर्थात् ओंकारके अर्थरूप परमात्माको जाना था। वे प्रसिद्ध ऋषि नैमिषारण्यमें यज्ञ करनेवाले ऋषियोंके उद्गाता हुए थे और उन्होंने इन यज्ञ करनेवालोंके लिये उनकी कामनापूर्तिके उद्देश्यसे उद्गीथका गान किया था। प्राणके महत्त्वको इस प्रकार जाननेवाला जो उपासक अक्षर—ओंकाररूप उद्गीथकी उपासना करता है, वह निस्संदेह ओंकारके गानद्वारा अपनी मनोवाञ्छित वस्तुको आकर्षित करनेमें समर्थ होता है। इस प्रकार अध्यात्मविषयक—शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली उपासनाका प्रकरण समाप्त हुआ॥ १०—१४॥

तृतीय खण्ड

ओंकारकी आधिदैविक उपासना

अब ओंकारकी आधिदैविक उपासनाका वर्णन किया जाता है। जो यह सूर्य तपता है, उसीकी उद्गीथके रूपमें उपासना करनी चाहिये। यह सूर्य उदय होते ही मानो समस्त प्रजाके लिये अन्न आदिकी उत्पत्तिके उद्देश्यसे उद्गान करता है—उनकी उन्नतिमें कारण बनता है; इसीलिये यह 'उद्गीथ' है। इतना ही नहीं, यह उदय होते ही अन्धकार और भयका नाश कर देता है। अतः जो इस प्रकार सूर्यके प्रभावको जानता है, वह स्वयं जन्म-मृत्युके भय एवं अज्ञानरूप अन्धकारका नाशक बन जाता है॥ १॥

यह प्राण और वह सूर्य दोनों समान ही हैं; क्योंकि यह मुख्य प्राण उष्ण है और सूर्य भी गरम है। इस प्राणको लोग 'स्वर' (क्रियाशक्तिसम्पन्न) कहकर पुकारते हैं और उस सूर्यको 'स्वर' (स्वयं क्रियाशक्तिवाला) एवं 'प्रत्यास्वर' (दूसरोंको क्रियाशक्ति प्रदान करनेवाला) दोनों नामोंसे पुकारते हैं। इसीलिये इस प्राण एवं उस सूर्यके रूपमें उस उद्गीथकी उपासना करनी चाहिये॥ २॥

इसके बाद दूसरे प्रकारकी उपासना बतलायी जाती है। व्यानके रूपमें भी उद्गीथकी उपासना करनी चाहिये। मनुष्य जो श्वासके द्वारा भीतरकी वायुको बाहर निकालता है, वह प्राण है और जो बाहरकी वायुको भीतर ले जाता है, वह अपान है तथा जो प्राण और अपानकी संधि है अर्थात् जिसमें ये दोनों मिल जाते हैं, वह व्यान है। जो व्यान है, वही वाणी है*। इसीलिये मनुष्य श्वासको बाहर निकालने और भीतर खींचनेकी क्रिया न करता हुआ ही वाणीका स्पष्ट उच्चारण करता है अर्थात् सामान्यतया बोलते समय श्वास-प्रश्वासकी क्रिया बंद हो जाती है॥ ३॥

जो वाणी है, वही ऋचा है; इसलिये मनुष्य प्राण और अपानकी क्रिया न करता हुआ ही वेदकी ऋचाओंका भलीभाँति उच्चारण करता है। जो ऋचा है, वही साम है; क्योंकि 'ऋक्' का ही अंशविशेष साम है। इसलिये मनुष्य प्राण और अपानकी क्रिया न करता हुआ ही सामका गान करता है। जो साम है, वही उद्गीथ है; क्योंकि सामका ही मुख्य भाग 'उद्गीथ' है। इसलिये मनुष्य प्राण और अपानकी क्रिया न करता हुआ ही उच्चस्वरसे उद्गीथका गान करता है अर्थात् तीनोंमें ही व्यानकी ही प्रधानता है। व्यान ही तीनोंका आधार है। इनके अतिरिक्त जो विशेष सामर्थ्यकी अपेक्षा रखनेवाले कर्म हैं—जैसे काष्ठ-मन्थनद्वारा अग्निको प्रकट करना, एक नियत सीमातक दौड़ लगाना, कठोर धनुषको खींचना इत्यादि—इन सबको मनुष्य प्राण और अपानकी क्रियाको रोककर व्यानके बलसे ही करता है। इस

* प्रथम खण्डमें जिस प्राणकी वाणी और ऋचाके साथ एकता की गयी है, वही प्राण यहाँ व्यानके नामसे कहा गया है। वहाँ 'प्राण' शब्दसे प्राणके समष्टिरूपका वर्णन है, केवल श्वासको बाहर निकालनेकी क्रियाका नाम ही वहाँ प्राण नहीं है—यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये।

प्रकार व्यानकी श्रेष्ठता सिद्ध हो जानेके कारण व्यानके रूपमें ही उद्गीथकी उपासना करनी चाहिये॥ ४-५॥

अब एक और प्रकारकी उपासना बतायी जाती है। वह यह है कि 'उद्गीथ' शब्दके जो तीन अक्षर हैं, उनके रूपमें उद्गीथ शब्दवाच्य परमात्माकी उपासना करनी चाहिये। इनमें पहला 'उत्' ही प्राण है; क्योंकि मनुष्य प्राणसे ही उत्थान करता है और 'उत्' उत्थानका वाचक है। दूसरा 'गी' वाणीका द्योतक है; क्योंकि वाणीको '**गीः**' इस नामसे पुकारते हैं और तीसरा 'थ' अन्नका वाचक है; क्योंकि यह समस्त जगत् अन्नके ही आधार स्थित है और 'थ' स्थितिका बोधक है। 'उत्' ही स्वर्गलोक है, 'गी' अन्तरिक्षलोक है और 'थ' भूलोक है। 'उत्' ही आदित्य है, 'गी' वायु है और 'थ' अग्नि है। 'उत्' ही सामवेद है, 'गी' यजुर्वेद है और 'थ' ऋग्वेद है। इस प्रकार जाननेवाला जो साधक 'उद्गीथ' शब्दके इन तीनों अक्षरोंकी उद्गीथ—ओंकारवाच्य परमात्माके रूपमें उपासना करता है, उसके लिये वाणी अपना सारा रहस्य प्रकट कर देती है अर्थात् उसके सामने समस्त वेदोंका तात्पर्य अपने-आप प्रकट हो जाता है तथा वह सब प्रकारकी भोग-सामग्रीसे एवं उसे भोगनेकी शक्तिसे भी सम्पन्न हो जाता है॥ ६-७॥

अब कामनाओंकी उत्तम सिद्धिका निश्चित साधन बताया जाता है। इसके लिये उपासनाके जो सात अङ्ग आगे बताये जानेवाले हैं, उन्हें ध्यानमें रखना चाहिये। उनमेंसे पहला अङ्ग यह है कि जिस सामके द्वारा साधक अपने इष्टदेवकी स्तुति करना चाहता हो, उसे सदा याद रखे। दूसरी बात यह है कि वह साम—गाये जानेवाला मन्त्र जिस ऋचामें प्रतिष्ठित हो, उस ऋचाको भी ध्यानमें रखे। तीसरी बात यह है कि जिस ऋषिके द्वारा उस मन्त्रका साक्षात्कार किया गया हो, उस ऋषिको स्मरण रखे। चौथी बात यह है कि उस सामगानके द्वारा जिस देवताकी स्तुति करना उपासकको अभीष्ट हो, उस देवताका भलीभाँति स्मरण रखे। पाँचवीं बात यह है कि जिस छन्दवाले मन्त्रसे वह स्तुति करना चाहता हो, उस छन्दको स्मरण रखे और छठी बात यह है कि सामवेदके जिस स्तोत्रसमूहसे स्तुति की जानेवाली हो, उस स्तुति-समूहको भी ध्यानमें रखे। सातवीं बात यह है कि जिस ओर मुख करके स्तुति करनेका विचार हो, उस दिशाका भी ध्यान रखे। अन्तमें प्रमादरहित अर्थात् सावधान होकर अपनी अभिलाषाको याद रखते हुए परमात्माके समीप जाकर अर्थात् ध्यानके द्वारा उनमें स्थित होकर स्तुति करनी चाहिये; क्योंकि इस प्रकार स्तुति करनेवाला उपासक जिस कामनासे स्तुति करता है, उसकी वह कामना शीघ्र ही पूर्णतया सफल हो जाती है॥ ८—१२॥

~~~ ○ ~~~

चतुर्थ खण्ड

ओंकारके आश्रयसे अमृतत्वकी प्राप्ति

'ॐ' यह अक्षर ही उद्गीथ है, यों समझकर इसकी उपासना करनी चाहिये; क्योंकि यज्ञमें उद्गाता नामक ऋत्विज् 'ॐ' इस अक्षरका ही उच्चस्वरसे गान करता है। उस ओंकारकी व्याख्या की जाती है॥ १॥

यह प्रसिद्ध है कि मृत्युसे डरते हुए देवताओंने ऋक्, यजुः और सामरूप तीनों वेदोंमें प्रवेश किया—उनका आश्रय लिया। उन्होंने गायत्री आदि भिन्न-भिन्न छन्दोंके मन्त्रोंसे अपनेको ढक लिया—उन्हें अपना कवच बनाया। उन्होंने जो भिन्न-भिन्न छन्दोंसे युक्त मन्त्रोंद्वारा अपनेको आच्छादित कर लिया, इसीसे वे 'छन्द' कहलाये। जो आच्छादन करे, वही छन्द—यह 'छन्दस्' शब्दकी व्युत्पत्ति है॥ २॥

जिस प्रकार मछली पकड़नेवाला धीवर जलके भीतर भी मछलीको देख लेता है, उसी प्रकार देवताओंको मृत्युने उन ऋक्, साम एवं यजुर्वेदके मन्त्रोंकी ओटमें भी देख लिया—वहाँ भी उसने इनका पिण्ड नहीं छोड़ा। वे देवतालोग भी इस बातको जान गये; अतः ऋक्, साम और यजुर्वेदके मन्त्रोंसे ऊपर उठकर वे स्वरमें अर्थात् ओंकारमें ही प्रविष्ट हो गये॥ ३॥

जब कोई ऋक्का—ऋग्वेदके मन्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह निःसंदेह 'ॐ' इस प्रकार ही उच्चस्वरसे उच्चारण करता है। इसी प्रकार सामको और वैसे ही यजुर्वेदको जाननेवाला भी 'ॐ' का ही गान करता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि जो यह ओंकाररूप
~~~

अक्षर अर्थात् उसका वाच्यभूत परमात्मा है, वही ऊपर बताया हुआ स्वर है; वही अमृत—मृत्युसे छुड़ानेवाला एवं भयरहित स्थान है। उसका आश्रय लेकर देवतालोग अमर और निर्भय हो गये। जो ओंकारको इस रूपमें जानकर उसके अर्थभूत अविनाशी परमेश्वरकी स्तुति एवं उपासना करता है तथा एकमात्र इसी अमृतरूप, सर्वथा भयरहित एवं अविनाशी परमात्माके स्वरूपभूत इस स्वरमें प्रविष्ट हो जाता है—उसकी शरणमें चला जाता है; वह उसमें प्रवेश करके उसी अमृतको प्राप्त कर लेता है, जिस अमृतको पूर्वोक्त प्रकारसे देवताओंने प्राप्त किया था॥ ४-५॥

पञ्चम खण्ड

सूर्य एवं प्राणके रूपमें ओंकारकी उपासना

अब ओंकारकी उपासनाका अन्य प्रकार बताया जाता है। निश्चय ही जो उद्गीथ—गानेयोग्य परमात्मा है, वही प्रणव—ओंकार है और जो प्रणव है, वही उद्गीथ है—यों समझना चाहिये; क्योंकि नाम और नामीमें कोई भेद नहीं होता। वह आकाशमें विचरनेवाला सूर्य ही उद्गीथ है और यही प्रणव भी है अर्थात् सूर्यमें ही परमात्मा और उनके वाचक 'ॐ' की भावना करनी चाहिये; क्योंकि यह 'ॐ' इस प्रकार उच्चारण करता हुआ ही गमन करता है। यहाँ '**स्वरन् एति**' (उच्चारण करता हुआ गमन करता है)—इस प्रकार 'सूर्य' शब्दकी व्युत्पत्ति की गयी है॥ १॥

एक बार कौषीतकि ऋषिने अपने पुत्रसे इस प्रकार कहा—'बेटा! मैंने इसी सूर्यको लक्ष्य करके ओंकारका भलीभाँति गान किया था; इसलिये मेरे तू एक पुत्र है। तू सूर्यकी किरणोंका सब ओरसे आवर्तन कर—उन सबके रूपमें ओंकारका बार-बार चिन्तन कर; निःसंदेह तेरे बहुत-से पुत्र हो जायँगे।' इस प्रकार यह आधिदैविक—देवतासम्बन्धी उपासना है॥ २॥

अब पुनः आध्यात्मिक (शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाली) उपासनाका प्रकार बताया जाता है। जो यह श्वासके रूपमें चलनेवाला मुख्य प्राण है, उसीके रूपमें उद्गीथकी—गानेयोग्य परमात्माकी उपासना करनी चाहिये; क्योंकि वह 'ॐ' इस प्रकार उच्चारण करता हुआ ही गमन करता है। प्राण सूर्यरूप है, इसीलिये '**स्वरन् एति**' इसी प्रकार यहाँ भी व्युत्पत्ति की गयी है अर्थात् हमारे प्राणके द्वारा निरन्तर ओंकारकी ध्वनि हो रही है—ऐसी भावना करते हुए उसमें ओंकाररूप परमात्माका ध्यान करना चाहिये॥ ३॥

एक बार कौषीतकि ऋषिने अपने पुत्रसे यह बात कही कि "बेटा! मैंने इस प्राणको ही लक्ष्य करके—इसीमें परमात्माकी भावना करते हुए ओंकारका भलीभाँति गान—आवर्तन किया था; इसलिये मेरे तू एक पुत्र है। 'निश्चय ही मेरे बहुत-से पुत्र होंगे' इस संकल्पसे तू अनेक रूपोंमें प्रतिष्ठित प्राणरूप परमात्माका भलीभाँति गान कर—उपासना कर"*॥ ४॥

अब कहते हैं कि निश्चय ही सामका जो उद्गीथ नामक भाग है, वही प्रणव है; क्योंकि प्रणव उसका सार है और जो प्रणव है, वही उद्गीथ है अर्थात् दोनोंमें कोई भेद नहीं है। इस रहस्यको जाननेवाला निःसंदेह होताके आसनसे ही उद्गाताद्वारा किये गये दोषयुक्त उद्गानको प्रणवके उच्चारणसे पीछे सुधार लेता है; क्योंकि भगवान्‌के नामोच्चारणसे यज्ञकी सारी त्रुटियाँ दूर हो जाती हैं। यह इस ज्ञानकी महिमा है॥ ५॥

षष्ठ खण्ड

विविध रूपोंमें उद्गीथोपासना

यह पृथ्वी ही ऋक् है और अग्नि साम है। वह यह अग्निरूप साम इस पृथ्वीरूप ऋक्‌में प्रतिष्ठित है—भलीभाँति स्थित है। इसीलिये ऋक्‌में प्रतिष्ठित सामका गान किया जाता है। पृथ्वी ही 'सा' है और अग्नि 'अम' है; वे दोनों मिलकर 'साम' हैं। इसी प्रकार अन्तरिक्ष ही ऋक् है और वायु साम है। वह यह वायुरूप साम इस

* जो बात इन्हीं ऋषिने दूसरे मन्त्रमें सूर्यके सम्बन्धमें कही थी, वही यहाँ प्राणके सम्बन्धमें कही गयी है। इससे भी प्राण और सूर्यकी एकता प्रतिपादित होती है। प्रश्नोपनिषद्‌में प्राण और सूर्यकी एकताका भलीभाँति निरूपण हुआ है।

अन्तरिक्षरूप ऋक्‌में प्रतिष्ठित है। इसीलिये ऋक्‌में प्रतिष्ठित सामका गान किया जाता है। अन्तरिक्ष ही मानो 'सा' है और वायु 'अम' है; वे दोनों मिलकर साम हैं। पुनः द्युलोक—स्वर्गलोक ही ऋक् और सूर्य ही साम है। वह यह सूर्यरूप साम इस स्वर्गरूप ऋक्‌में प्रतिष्ठित है। इसीलिये ऋक्‌में प्रतिष्ठित सामका गान किया जाता है। द्युलोक ही मानो 'सा' है और सूर्य मानो 'अम' है; वे दोनों मिलकर साम हैं। समस्त नक्षत्रमण्डल ही ऋक् है और चन्द्रमा साम है। वही यह चन्द्रमारूप साम इस नक्षत्ररूप ऋक्‌में प्रतिष्ठित है। इसीलिये ऋक्‌में प्रतिष्ठित सामका गान किया जाता है। नक्षत्रमण्डल ही मानो 'सा' है और चन्द्रमा 'अम' है; दोनों मिलकर साम हैं॥ १—४॥

अब दूसरी बात कहते हैं। जो यह प्रत्यक्ष दीखनेवाली सूर्यकी श्वेत आभा है, वही ऋक् है तथा जो उसके भीतर छिपा हुआ नीलापन और अतिशय श्यामता है, वह साम है। वह श्याम आभारूप साम इस श्वेत आभारूप ऋक्‌में प्रतिष्ठित है, इसीलिये ऋक्‌में प्रतिष्ठित सामका गान किया जाता है। इसके सिवा यह जो सूर्यकी श्वेत प्रभा—उज्ज्वल प्रकाश है, वही 'सा' है तथा जो नील एवं अतिशय श्याम प्रभा है, वह 'अम' है। वे दोनों मिलकर साम हैं तथा सूर्यमें जो यह उसका अन्तर्यामी स्वर्णसदृश प्रकाशस्वरूप पुरुष दिखायी देता है—जिसकी दाढ़ी सुवर्णकी भाँति प्रकाशमय है तथा केश भी सोनेकी ही भाँति चमचमाते हैं और जो नखके अग्रभागसे लेकर चोटीतक सब-का-सब स्वर्णमय प्रकाशयुक्त है, वह परम पुरुष परमेश्वर ही है। उस सुवर्णसदृश प्रकाशयुक्त पुरुषके दोनों नेत्र ऐसे हैं, जैसे कोई लाल कमल हो। उसका 'उत्' (सबसे ऊपर उठा हुआ) यह नाम है। वह यह परमेश्वर समस्त पापोंसे ऊपर उठा हुआ है। जो कोई उपासक इस प्रकार जानता है, वह निश्चय ही सब पापोंसे ऊपर उठ जाता है॥ ५—७॥

ऋग्वेद और सामवेद उस परमात्माके ही गुणगान हैं; इसलिये वह उद्गीथ है तथा इसीलिये जो उद्गाता है, वह वास्तवमें उसीका गान करनेवाला है। जो स्वर्गलोकसे भी ऊपरके लोक हैं, उनका भी तथा देवताओंके भोगोंका भी शासन वह परमात्मा ही करता है। यह आधिदैविक उपासना समाप्त हुई॥ ८॥

सप्तम खण्ड

शरीरकी दृष्टिसे उद्गीथोपासना

अब वही बात शरीरकी दृष्टिसे समझायी जाती है। वाक्-इन्द्रिय ही ऋक् है, प्राण साम है। वही यह प्राणरूप साम वाणीरूप ऋक्‌में प्रतिष्ठित—भलीभाँति स्थित है। इसीलिये ऋक्‌में प्रतिष्ठित सामका गान किया जाता है। वाणी ही 'सा' है, प्राण 'अम' है; वे दोनों मिलकर साम हैं। इसी प्रकार नेत्र ही ऋक् है और उसके भीतरकी काली पुतली साम है। वही यह आँखकी पुतलीरूप साम इस नेत्ररूप ऋक्‌में प्रतिष्ठित है। इसीलिये ऋक्‌में प्रतिष्ठित सामका गान किया जाता है। नेत्र ही 'सा' है और पुतली 'अम' है; वे दोनों मिलकर साम हैं। पुनः श्रोत्र ही ऋक् है, मन साम है। वही यह मनरूप साम श्रोत्ररूप ऋक्‌में प्रतिष्ठित है। इसीलिये ऋक्‌में प्रतिष्ठित सामका गान किया जाता है। श्रोत्र ही 'सा' है, मन 'अम' है; दोनों मिलकर साम हैं तथा यह जो नेत्रोंकी श्वेत आभा है, वही ऋक् है तथा जो नील एवं अतिशय श्याम आभा है, वह साम है। वही यह श्याम आभारूप साम इस श्वेत आभारूप ऋक्‌में प्रतिष्ठित है। इसीलिये ऋक्‌में प्रतिष्ठित सामका गान किया जाता है तथा यह जो नेत्रकी श्वेत आभा है, वही 'सा' है; और जो नील और अतिशय श्याम आभा है, वह 'अम' है; उन दोनोंका सम्मिलित रूप साम है तथा यह जो नेत्रके भीतर पुरुष दिखायी देता है, वही ऋक् है, वही साम है, वही यजुर्वेद है, वही उक्थ—स्तोत्र-समूह है और वही ब्रह्म है। इस पुरुषका वही रूप है, जो छठे खण्डमें वर्णित आदित्यमण्डलमें स्थित पुरुषका रूप है। जो उसके गुणगान हैं, वे ही इसके गुणगान हैं और जो उसका नाम (उत्) है, वही इसका भी नाम है। पृथिवीसे नीचे जो भी लोक हैं, उनका यही पुरुष शासन करता है तथा मनुष्योंके भोग भी उसीके अधीन हैं। इसलिये जो लोग वीणापर गाते हैं, वे इन्हीं परमेश्वरका गुणगान करते हैं; इसीसे वे धनलाभ करते

हैं—अभीष्ट वस्तुओंको प्राप्त करते हैं तथा इस रहस्यको इस रूपमें जाननेवाला जो उपासक साम-गान करता है, वह नेत्रस्थित तथा आदित्यमण्डलवर्ती दोनों ही पुरुषोंका गुणगान करता है; वह उन परमेश्वरसे ही अभीष्ट लाभ करता है। जो भी उस सूर्यलोकसे ऊपरके लोक हैं, उन सबको तथा देवताओंके भोगोंको भी वह प्राप्त कर लेता है तथा सूर्यलोक अथवा मनुष्यलोकसे नीचेके जो भी लोक हैं, उनको तथा मनुष्योंके भोगोंको भी वह इन परम पुरुषसे ही प्राप्त कर लेता है। इसलिये निस्संदेह इस प्रकार जाननेवाला उद्गाता यजमानसे यों कहे—'मैं तेरे लिये कौन-सी अभीष्ट वस्तुका गानके द्वारा आवाहन करूँ?' क्योंकि जो इस रहस्यको इस प्रकार जानकर सामका गान करता है, वही वाञ्छित भोगोंका गानद्वारा आवाहन करनेमें समर्थ होता है॥ १—९॥

अष्टम खण्ड

उद्गीथके सम्बन्धमें शिलक और दाल्भ्यका संवाद

प्रसिद्ध है, तीन ऋषि उद्गीथका तत्त्व जाननेमें कुशल थे—एक तो शालावान्‌के पुत्र शिलक, दूसरे चिकितायनके पुत्र दाल्भ्य[1] और तीसरे जीवलके पुत्र प्रवाहण। एक बार वे तीनों आपसमें इस प्रकार कहने लगे—'निश्चय ही हमलोग उद्गीथविद्यामें कुशल हैं; इसलिये यदि सबकी सम्मति हो तो हम उद्गीथके विषयमें बातचीत करें।' 'बहुत ठीक है, ऐसा ही हो' यों कहकर वे सब एक स्थानपर सुखसे बैठ गये। तब प्रसिद्ध राजर्षि जीवलके पुत्र प्रवाहण ऋषि शेष दोनोंसे बोले—'पहले आप दोनों पूज्यजन बातचीत आरम्भ करें। उपदेश देते हुए आप दोनों ब्राह्मणोंके वचनोंको मैं सुनूँगा।' यों कहकर वे चुप हो गये॥ १-२॥

कहा जाता है, तब वे शालावान्‌के पुत्र शिलक ऋषि चिकितायनके पुत्र दाल्भ्यसे बोले—'कहिये तो मैं ही आपसे प्रश्न करूँ?' इसपर दाल्भ्यने कहा—'पूछो।' शिलकने पूछा—'सामका आश्रय कौन है?' दाल्भ्यने कहा—'स्वर ही सामका आश्रय है।' 'स्वरका आश्रय कौन है?' इस प्रकार पूछे जानेपर उन्होंने कहा—'प्राण ही स्वरका आश्रय है।' फिर प्रश्न हुआ—'प्राणका आश्रय कौन है?' उत्तर मिला—'अन्न ही प्राणका आश्रय है।' शिलकने फिर प्रश्न किया—'अन्नका आश्रय कौन है?' दाल्भ्यने उत्तर दिया—'जल ही अन्नका आश्रय है।' शिलकने पुनः पूछा—'जलका आश्रय कौन है?' दाल्भ्यने कहा—'स्वर्गलोक ही जलका आश्रय है।' 'उस लोकका आश्रय कौन है?' शिलक पूछते ही गये। इसपर दाल्भ्य बोले—'स्वर्गलोकसे आगे नहीं जाना चाहिये, उसके परेकी बात नहीं पूछनी चाहिये। हम स्वर्गलोकमें ही सामकी पूर्णतया स्थिति मानते हैं, क्योंकि सामको स्वर्गलोक कहकर ही उसकी स्तुति की जाती है'[2]॥ ३—५॥

चिकितायन-पुत्र दाल्भ्यसे शालावान्‌के पुत्र सुप्रसिद्ध शिलक ऋषिने कहा—'दाल्भ्य! तुम्हारा बताया हुआ साम निःसंदेह प्रतिष्ठाहीन है अर्थात् तुमने जो सामका अन्तिम आश्रय स्वर्ग बताया, वह ठीक नहीं है। स्वर्गका भी कोई और आश्रय अवश्य होना चाहिये। यदि कोई सामके तत्त्वको जाननेवाला विद्वान् तुम्हारे इस अधूरे उत्तरपर झुँझलाकर तुम्हें यह कह दे कि तुम्हारा सिर गिर जायगा तो उसके यों कहते ही तुम्हारा सिर गिर पड़ेगा—यह निश्चय समझो।' दाल्भ्यने कहा—'क्या मैं सामका तत्त्व श्रीमान्‌से जान सकता हूँ?' शिलकने कहा—'हाँ, जानो।' तब दाल्भ्यने पूछा—'स्वर्गलोकका आधार कौन है?' 'यह मनुष्यलोक ही उसका आधार है,' शिलकने स्पष्ट उत्तर दिया। 'मनुष्यलोकका आधार कौन है?' दाल्भ्यका अगला प्रश्न था। इसपर शिलक बोले—'जो सबकी प्रतिष्ठा है, उस लोकसे आगे प्रश्न नहीं करना चाहिये। सबकी प्रतिष्ठारूप मनुष्यलोकमें ही

१. दाल्भ्यका अर्थ है दल्भकी सन्तान। यहाँ उनके पिताका नाम चिकितायन दिया गया है। ऐसी दशामें सम्भव है ये दल्भगोत्रमें उत्पन्न रहे हों, इसीलिये दाल्भ्य कहलाये हों। अथवा सम्भव है, ये द्व्यामुष्यायण रहे हों। 'द्व्यामुष्यायण' उन्हें कहते हैं, जो किसी दूसरेके गोद आये हों और जिन्होंने अपने जन्म देनेवाले पिताका उत्तराधिकार भी न छोड़ा हो। इस प्रकार वे दो पिताओंके पुत्र होते हैं। दो पिताओंके पुत्रकी ही हिंदू-धर्म-शास्त्रोंमें 'द्व्यामुष्यायण' संज्ञा है।

२. श्रुति कहती है—'स्वर्गो वै लोकः सामवेदः।'

हम सामकी भलीभाँति स्थिति मानते हैं; क्योंकि सामको सबकी प्रतिष्ठारूप पृथ्वी कहकर ही उसकी स्तुति की जाती है।'* तब जीवल-पुत्र प्रवाहणने शिलकसे कहा—'शालावान्‌के पुत्र शिलक! तम्हारा समझा हुआ साम भी निःसन्देह अन्तवाला ही है। अतः यदि ऐसी स्थितिमें कोई सामके तत्त्वको जाननेवाला पुरुष तुम्हें शाप दे दे कि तुम्हारा सिर गिर जायगा तो उसके यों कहते ही तुम्हारा सिर गिर सकता है।' इसपर शिलकने कहा—'क्या मैं इस रहस्यको श्रीमान्‌से जान सकता हूँ?' प्रवाहणने उत्तर दिया—'जान लो'॥ ६—८॥

नवम खण्ड

उद्गीथके सम्बन्धमें शिलक और प्रवाहणका संवाद

शिलकने प्रवाहणसे पूछा—'इस मनुष्यलोकका आश्रय कौन है?' इसपर प्रवाहणने उत्तर दिया—'आकाश अर्थात् सर्वत्र प्रकाशित परमात्मा ही इसके आश्रय हैं। निःसंदेह ये समस्त जीव आकाशसे ही उत्पन्न होते हैं और आकाशमें ही विलीन होते हैं; क्योंकि आकाश ही इन सबसे बड़ा है और आकाश ही सबका परम आश्रय है। वे आकाशस्वरूप परमात्मा ही बड़े-से-बड़े और उद्गीथ (गानेयोग्य) हैं। वे सर्वथा असीम हैं। जो कोई उपासक इस प्रकार समझकर इस बड़े-से-बड़े उद्गीथरूप परमेश्वरकी उपासना करता है, उसका जीवन निःसंदेह ऊँचे-से-ऊँचा हो जाता है और वह निश्चय ही बड़े-से-बड़े लोकोंको जीत लेता है—प्राप्त कर लेता है।' एक बार शुनकके पुत्र अतिधन्वा नामक ऋषिने उदरशाण्डिल्य नामके ऋषिको इस ऊपर बताये हुए उद्गीथका रहस्य बताकर कहा था—'तेरी संतानोंमें लोग जबतक इस उद्गीथको जानते रहेंगे, तबतक इस लोकमें उनका जीवन इन सब साधारण मनुष्योंसे अवश्य ही अत्यन्त श्रेष्ठ बना रहेगा तथा मरनेके बाद उन्हें उस लोकमें—परलोकमें उत्तम स्थान मिलेगा।' इस प्रकार समझना चाहिये। इस रहस्यको जाननेवाला जो कोई पुरुष उद्गीथकी उपासना करता है, उसका जीवन इस मनुष्यलोकमें निश्चय ही सर्वश्रेष्ठ हो जाता है तथा मरनेके बाद परलोकमें उसे सर्वोपरि स्थान मिलता है—यह निश्चित बात है॥ १—४॥

दशम खण्ड

उषस्तिका आख्यान

एक बार ओले गिरनेसे कुरुदेशकी खेती चौपट हो गयी थी। उन दिनों चक्रमुनिके पुत्र उषस्ति ऋषि अपनी धर्मपत्नी आटिकीके साथ (जिसने अभी युवावस्थामें प्रवेश नहीं किया था) बड़ी दीन अवस्थामें—पराश्रित होकर किसी हाथीवानोंके गाँवमें रहते थे। एक दिन अन्नके लिये भीख माँगते हुए उषस्तिने अत्यन्त निकृष्ट कोटिके उड़द खाते हुए एक महावतसे याचना की। उन प्रसिद्ध मुनिसे हाथीवान् इस प्रकार बोला कि 'जितने और जो उड़द मेरे इस पात्रमें रखे हैं, उनके सिवा और उड़द मेरे पास नहीं हैं।' ऋषिने कहा—'इन्हींमेंसे मुझे दे दे।' महावतने अपने पात्रमें बचे हुए सारे उड़द उन्हें दे दिये। महावत बोला—'उड़द खाकर जल भी पी लीजिये।' इसपर ऋषिने उत्तर दिया—'नहीं, ऐसा करनेपर मेरे द्वारा तुम्हारा जूठा जल पिया जायगा।' 'क्या ये उड़द भी जूठे नहीं हैं?' महावतके यों पूछनेपर उन प्रसिद्ध ऋषिने उत्तर दिया—'अवश्य ही इन उड़दोंको न खानेपर मैं जीवित न रहता। पर पीनेका जल तो मुझे यथेष्ट मिल जाता है'॥ १—४॥

उषस्ति ऋषि खानेसे बचे हुए उड़दोंको अपनी पत्नीके लिये ले आये। उसने पहले ही अच्छी भिक्षा पा ली थी, इसलिये उसने उन उड़दोंको अपने पतिसे लेकर रख दिया। दूसरे दिन प्रातःकाल शय्यात्याग करते समय उषस्तिने कहा—'हाय, यदि हमें थोड़ा-सा भी अन्न मिल जाता तो हम कुछ धन कमा लाते। अमुक राजा यज्ञ करनेवाला है। वह मुझे ऋत्विजोंके सभी

* श्रुतिका वचन है—'इयं वै रथन्तरम्' (यह पृथ्वी ही रथन्तरसाम है)।

प्रकारके कार्योंके लिये वरण कर लेगा।' ऋषिसे उनकी पत्नीने कहा—'स्वामिन्! लीजिये; कल जो उड़द आप मुझे दे गये थे, वे ही मेरे पास बचे हुए हैं।' बस, उन्हें खाकर उषस्ति उस विशाल यज्ञमें चले गये॥ ५—७॥

उस यज्ञमें पहुँचकर जहाँ उद्गातालोग स्तुति करते हैं, उस स्थानपर स्तुति करनेके लिये उद्यत उद्गाता आदि ऋत्विजोंके समीप वे बैठ गये। फिर उन्होंने स्तुति करनेवाले प्रस्तोता ऋत्विक्से कहा—'प्रस्तोता! जिस देवताका प्रस्तावसे सम्बन्ध है अर्थात् जिनकी तुम स्तुति करने जा रहे हो, उसे बिना जाने यदि तुम स्तुति करोगे तो याद रखना, तुम्हारा मस्तक गिर जायगा।' इसी प्रकार उन्होंने उद्गातासे कहा—'उद्गाता! जिस देवताका उद्गीथसे सम्बन्ध है अर्थात् जिसका तुम उद्गीथद्वारा गान करने जा रहे हो, उसे बिना जाने यदि तुम उद्गान करोगे तो निश्चय समझो, तुम्हारा मस्तक गिर पड़ेगा।' तदनन्तर उन्होंने प्रतिहर्तासे कहा—'प्रतिहर्ता! जिस देवताका प्रतिहारसे सम्बन्ध है, उसे न जानते हुए यदि तुम प्रतिहा-क्रिया करोगे तो समझ लो कि तुम्हारा सिर तुम्हारी गर्दनपर नहीं रहेगा।' इसपर वे सब ऋत्विक् अपने-अपने कार्यसे उपरत होकर चुपचाप बैठ गये॥ ८—११॥

एकादश खण्ड

प्रस्ताव आदि कर्मोंसे सम्बद्ध देवताओंका वर्णन

तब इन उषस्ति ऋषिसे यज्ञ करानेवाले राजाने कहा—'मैं श्रीमान्का ठीक-ठीक परिचय प्राप्त करना चाहता हूँ।' इसपर ऋषिने उत्तर दिया—'मैं चक्रका पुत्र उषस्ति नामका ऋषि हूँ।' राजाने कहा—'सच मानिये, मैंने इन समस्त ऋत्विज्-सम्बन्धी कर्मोंके लिये श्रीमान्की सब जगह खोज की थी। श्रीमान्के न मिलनेपर ही मैंने दूसरे ऋत्विजोंको चुना है, परंतु अब मेरे सम्पूर्ण ऋत्विज्-सम्बन्धी कर्मोंपर श्रीमान् ही रहें।' ऋषिने 'बहुत अच्छा' कहकर राजाके प्रस्तावका अनुमोदन किया और फिर कहा—'तब मेरी आज्ञा पाकर ये पहलेवाले ऋत्विज् ही स्तुति आरम्भ करें, परंतु एक बात है—जितना धन आप इन लोगोंको दें, उतना ही मुझे भी दें।' राजाने 'यही होगा' कहकर अपनी स्वीकृति दे दी॥ १—३॥

तदनन्तर प्रस्तोता उन प्रसिद्ध ऋषिके पास आकर बोला—"श्रीमान्ने मुझे यह कहा था कि 'प्रस्तोता! जिस देवताकी तुम स्तुति करने जा रहे हो, उसे बिना जाने यदि तुम स्तुति-पाठ करोगे तो तुम्हारा सिर धड़से अलग हो जायगा।' सो वह देवता कौन है—मैं यह जानना चाहता हूँ।" इसपर ऋषि बोले—"वह देवता प्राण है। निःसंदेह ये समस्त प्राणी प्रलयके समय प्राणमें ही प्राणरूप होकर विलीन हो जाते हैं और पुनः सृष्टिकालमें प्राणसे ही प्रकट होते हैं। वही यह प्राण प्रस्ताव अर्थात् स्तुतिमें अनुगत देवता है; उसको बिना जाने यदि तुम स्तुति आरम्भ कर देते तो मेरे यह कहनेपर कि 'तुम्हारा सिर धड़से अलग हो जाय,' वैसा अवश्य हो जाता"॥ ४-५॥

तदनन्तर उद्गाता उषस्तिके पास आकर बोला—"श्रीमान्ने मुझसे यह कहा था कि 'उद्गाता! जो उद्गीथसे सम्बन्ध रखनेवाला देवता है, उसे न जानकर यदि तुम उद्गान करोगे तो तुम्हारा सिर धड़से अलग हो जायगा।' अतः वह देवता कौन है—यह मैं आपसे जानना चाहता हूँ।" इसपर उन प्रसिद्ध ऋषि उषस्तिने कहा—"वह देवता सूर्य है। निश्चय ही ये समस्त प्राणी आकाशमें स्थित सूर्यका यशोगान किया करते हैं। वही यह सूर्य उद्गीथसे सम्बन्ध रखनेवाला देवता है। उसे बिना जाने यदि तुमने उद्गान किया होता तो मेरे यह कहनेपर कि 'तुम्हारा सिर धड़से अलग हो जाय' वैसा अवश्य हो जाता"॥ ६-७॥

इसके बाद प्रतिहर्ता उषस्तिके पास आकर यों कहने लगा—"श्रीमान्ने मुझसे यह कहा था कि 'प्रतिहर्ता! जो प्रतिहारसे सम्बन्ध रखनेवाला देवता है, उसे बिना जाने यदि तुम प्रतिहारकी क्रिया करोगे तो तुम्हारा सिर अलग होकर गिर पड़ेगा।' अतः वह देवता कौन है, यह मैं आपसे जानना चाहता हूँ।" ऋषिने प्रतिहर्ताके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार दिया—"जिस

देवताकी बात तुमने पूछी है, वह अन्न है। निःसंदेह ये समस्त प्राणी अन्नको ही खाकर जीवन धारण करते हैं। वही यह अन्न प्रतिहारसे सम्बन्ध रखनेवाला देवता है। उसे बिना जाने यदि तुम प्रतिहारकी क्रिया करते तो मेरे यह कहनेपर कि 'तुम्हारा सिर धड़से अलग हो जाय' वैसा अवश्य हो जाता''॥ ८-९॥

द्वादश खण्ड

शौव उद्गीथका वर्णन

अब यहाँसे कुत्ते (का रूप धारण करनेवाले ऋषियों) द्वारा प्रत्यक्ष किये हुए उद्गीथका वर्णन किया जाता है। यह बात इस रूपमें प्रसिद्ध है कि दल्भ ऋषिके पुत्र बक अथवा मित्राके पुत्र ग्लाव ऋषि स्वाध्याय करनेके लिये गाँवसे बाहर किसी निर्जन स्थानमें गये। उक्त ऋषिपर अनुग्रह करनेके लिये वहाँ श्वेत रंगका एक अलौकिक कुत्ता (कुत्तेके रूपमें ऋषि) प्रकट हुआ। तत्पश्चात् दूसरे भी कई कुत्ते उस पहले प्रकट हुए कुत्तेके पास आकर उससे बोले—'श्रीमन्! उद्गीथका गान करके हमारे लिये अन्न प्रस्तुत करें; क्योंकि हमलोग निश्चित ही भूखे हैं।' उनसे वह श्वेत रंगका कुत्ता बोला—'कल प्रातः इसी स्थानमें तुमलोग मेरे पास आना।' उनकी इस बातको सुनकर दल्भपुत्र बक अथवा मित्रापुत्र ग्लाव ऋषि कौतूहलसे भर गये और यह देखनेके लिये कि वह कुत्ता किस प्रकार अन्न जुटाता है, वहीं उसके द्वारा निर्दिष्ट समयकी प्रतीक्षा करने लगे॥ १—३॥

निर्दिष्ट समयपर वे अलौकिक कुत्ते वहाँ एकत्रित हुए और जिस प्रकार यज्ञकर्ममें उद्गाता बहिष्पवमान नामक स्तोत्रद्वारा स्तुति आरम्भ करनेसे पूर्व एक-दूसरेसे मिलकर चलते हैं, ठीक उसी प्रकार वे भी एक-दूसरेसे जुड़कर परिभ्रमण करने लगे, फिर उन्होंने एक जगह आरामसे बैठकर हिंकार आरम्भ किया। अर्थात् 'हिं' स्तोभ* का प्रयोग करते हुए सामगान आरम्भ किया। गान इस आशयका था—

'हे सबकी रक्षा करनेवाले परमात्मन्! हम भोजन और जलपानके इच्छुक हैं। परमात्मन्! आप प्रकाशस्वरूप देव हैं, अभीष्ट वस्तुकी वर्षा करनेवाले वरुण हैं, समस्त प्रजाका पालन करनेवाले प्रजापति हैं और सबको उत्पन्न करनेवाले सविता हैं। अतः हमारे लिये यहाँ अन्न ला दीजिये। हे अन्नके स्वामी! यहाँ अन्न लाइये, परमेश्वर! यहाँ अन्न प्रस्तुत कीजिये'॥ ४-५॥

त्रयोदश खण्ड

तेरह प्रकारके स्तोभोंका वर्णन

इस प्रकरणमें बताये जानेवाले तेरह प्रकारके स्तोभोंमें निश्चय ही 'हाउ' शब्द मनुष्यलोकका वाचक है, 'हाइ' वायुलोक है, 'अथ' चन्द्रलोक है, 'इह' आत्मा है और 'ई' अग्निरूप है। इनके अतिरिक्त 'ऊ' सूर्यरूप है, 'ए' आवाहनका बोधक है, 'औहोयि' विश्वेदेवा हैं, 'हिं' प्रजापतिस्वरूप है, 'स्वर' प्राणरूप है, 'या' अन्नरूप है। तथा 'वाक्' विराट्रूप है। तेरहवाँ और अन्तिम स्तोभ 'हुं' है, वह सबमें व्याप्त रहनेवाला वर्णनातीत निर्विशेष ब्रह्म है॥ १—३॥

जो सामके रहस्यको जान लेता है, उसके लिये वाणी स्वयं अपना रहस्य प्रकट कर देती है। वह भोग-सामग्रीसे तथा उसे भोगनेकी सामर्थ्यसे युक्त हो जाता है॥ ४॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥ १ ॥

* साम-गान करते समय उसके स्वर और लयकी पूर्तिके लिये जो 'हा ३ उ' आदि तेरह प्रकारके शब्द उपयोगमें लाये जाते हैं, उन्हें 'स्तोभ' कहते हैं। इनका अर्थ अगले खण्डमें बताया गया है। 'हिं' प्रजापतिरूप है और प्रजापति ही अन्नका स्वामी है, इसलिये उनकी प्रार्थनामें 'हिं' का प्रयोग किया गया है।

ॐ

द्वितीय अध्याय

प्रथम खण्ड

साधु-दृष्टिसे समस्त सामकी उपासना

ॐ समस्त सामकी उपासना निश्चय ही साधु है। जो साधु होता है, उसको साम कहते हैं और जो असाधु होता है, वह असाम कहलाता है। इसी विषयमें कहते हैं—[जब कहा जाय कि अमुक पुरुष] इस [राजा आदि]-के पास सामद्वारा गया तो [ऐसा कहकर] लोग यही कहते हैं कि वह इसके पास साधुभावसे गया और [जब यों कहा जाय कि] वह इसके पास असामद्वारा गया तो [इससे] लोग यही कहते हैं कि वह इसके यहाँ असाधुभावसे प्राप्त हुआ। इसके अनन्तर ऐसा भी कहते हैं कि हमारा साम (शुभ) हुआ अर्थात् जब शुभ होता है तो 'अहा! बड़ा अच्छा हुआ' ऐसा कहते हैं और ऐसा भी कहते हैं—'हमारा असाम हुआ' अर्थात् जब अशुभ होता है तो 'अरे! बुरा हुआ!' ऐसा कहते हैं। इसे इस प्रकार जाननेवाला जो पुरुष 'साम साधु है' ऐसी उपासना करता है, उसके समीप साधु धर्म शीघ्र ही आ जाते हैं और उसके प्रति विनम्र हो जाते हैं॥ १—४॥

द्वितीय खण्ड

पञ्चविध सामोपासना

लोकोंमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करनी चाहिये। पृथ्वी हिंकार है, अग्नि प्रस्ताव है, अन्तरिक्ष उद्गीथ है, आदित्य प्रतिहार है और द्युलोक निधन है—इस प्रकार ऊपरके लोकोंमें साम-दृष्टि करे। अब अधोगत लोकोंमें सामोपासनाका निरूपण किया जाता है—द्युलोक हिंकार है, आदित्य प्रस्ताव है, अन्तरिक्ष उद्गीथ है, अग्नि प्रतिहार है और पृथ्वी निधन है। जो इसे इस प्रकार जाननेवाला पुरुष लोकोंमें पञ्चविध सामकी उपासना करता है, उसके प्रति ऊर्ध्व और अधोमुख लोक भोग्यरूपसे उपस्थित होते हैं॥ १—३॥

तृतीय खण्ड

वृष्टिमें सामोपासना

वृष्टिमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करे। पूर्ववायु हिंकार है, मेघ उत्पन्न होता है यह प्रस्ताव है, बरसता है यह उद्गीथ है, चमकता और गर्जन करता है यह प्रतिहार है, जल ग्रहण करता है यह निधन है। जो इसे (इस उपासनाको) इस प्रकार जाननेवाला पुरुष वृष्टिमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करता है उसके लिये वर्षा होती है और वह स्वयं भी वर्षा करा लेता है॥ १-२॥

चतुर्थ खण्ड

जलमें सामोपासना

सब प्रकारके जलोंमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करे। मेघ जो घनीभावको प्राप्त होता है यह हिंकार है, वह जो बरसता है यह प्रस्ताव है, [नदियाँ] जो पूर्वकी ओर बहती हैं वह उद्गीथ है तथा जो पश्चिमकी ओर बहती हैं वह प्रतिहार है और समुद्र निधन है। जो इसे इस प्रकार जाननेवाला पुरुष सब प्रकारके जलोंमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करता है वह जलमें नहीं मरता और जलवान् होता है॥ १-२॥

पञ्चम खण्ड

ऋतुओंमें सामोपासना

ऋतुओंमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करे। वसन्त हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव है, वर्षा उद्गीथ है, शरत् प्रतिहार है और हेमन्त निधन है। जो इसे इस प्रकार जानने-वाला पुरुष ऋतुओंमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करता है उसे ऋतुएँ अपने अनुरूप भोग देती हैं और वह ऋतुमान् (ऋतुसम्बन्धी भोगोंसे सम्पन्न) होता है॥ १-२॥

षष्ठ खण्ड

पशुओंमें सामोपासना

पशुओंमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करे। बकरे हिंकार हैं, भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौएँ उद्गीथ हैं, अश्व प्रतिहार हैं और पुरुष निधन है। जो इसे इस प्रकार जाननेवाला पुरुष पशुओंमें पाँच प्रकारके सामकी उपासना करता है उसे पशु प्राप्त होते हैं और वह पशुमान् होता है॥ १-२॥

सप्तम खण्ड

प्राणोंमें सामोपासना

प्राणोंमें पाँच प्रकारके परोवरीय गुणविशिष्ट सामकी उपासना करे। उनमें प्राण हिंकार है, वाक् प्रस्ताव है, चक्षु उद्गीथ है, श्रोत्र प्रतिहार है और मन निधन है। ये उपासनाएँ निश्चय ही परोवरीय (उत्तरोत्तर उत्कृष्ट) हैं। जो इसे इस प्रकार जाननेवाला पुरुष प्राणोंमें पाँच प्रकारके उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर सामकी उपासना करता है उसका जीवन उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर होता जाता है और वह उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर लोकोंको जीत लेता है। यह पाँच प्रकारकी सामोपासनाका निरूपण किया गया॥ १-२॥

अष्टम खण्ड

वाणीमें सप्तविध सामोपासना

अब सप्तविध सामकी उपासना (प्रारम्भ की जाती) है—वाणीमें सप्तविध सामकी उपासना करनी चाहिये। वाणीमें जो कुछ 'हुं' ऐसा स्वरूप है वह हिंकार है, जो कुछ 'प्र' ऐसा स्वरूप है वह प्रस्ताव है और जो कुछ 'आ' ऐसा स्वरूप है वह आदि है, जो कुछ 'उत्' ऐसा शब्दरूप है वह उद्गीथ है, जो कुछ 'प्रति' ऐसा शब्द है वह प्रतिहार है, जो कुछ 'उप' ऐसा शब्द है वह उपद्रव है और जो कुछ 'नि' ऐसा शब्दरूप है वह निधन है। जो इसे इस प्रकार जाननेवाला पुरुष वाणीमें सात प्रकारके सामकी उपासना करता है उसे वाणी, जो कुछ वाणीका दोह (सार) है उसे देती है तथा वह प्रचुर अन्नसे सम्पन्न और उसका भोक्ता होता है॥ १—३॥

नवम खण्ड

आदित्य-दृष्टिसे सप्तविध सामोपासना

अब निश्चय ही इस आदित्यकी दृष्टिसे सप्तविध सामकी उपासना करनी चाहिये। आदित्य सर्वदा सम है, इसलिये वह साम है। मेरे प्रति, मेरे प्रति ऐसा होनेके कारण वह सबके प्रति सम है, इसलिये साम है। उस आदित्यमें ये सम्पूर्ण भूत अनुगत हैं—ऐसा जाने। जो उस आदित्यके उदयसे पूर्व है वह हिंकार है। उस सूर्यका जो हिंकाररूप है उसके पशु अनुगत हैं, इसीसे वे हिंकार करते हैं। अतः वे ही इस आदित्यरूप सामके

हिंकार-भाजन हैं तथा सूर्यके पहले-पहल उदित होनेपर जो रूप होता है वह प्रस्ताव है। उसके उस रूपके मनुष्य अनुगामी हैं अतः वे प्रस्तुति (प्रत्यक्षस्तुति) और प्रशंसा (परोक्षस्तुति)-की इच्छावाले हैं, क्योंकि वे इस सामकी प्रस्तावभक्तिका सेवन करनेवाले हैं। तत्पश्चात् आदित्यका जो रूप सङ्गववेलामें (सूर्योदयके तीन मुहूर्त्त पश्चात् कालमें) रहता है वह आदि है। उसके उस रूपके अनुगत पक्षिगण हैं; क्योंकि वे इस सामके आदिका भजन करनेवाले हैं, इसलिये वे अन्तरिक्षमें अपनेको निराधाररूपसे सब ओर ले जाते हैं तथा अब जो मध्यदिवसमें आदित्यका रूप होता है वह उद्गीथ है। इसके उस रूपके देवतालोग अनुगत हैं। इसीसे वे प्रजापतिसे उत्पन्न हुए प्राणियोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि वे इस सामकी उद्गीथभक्तिके भागी हैं तथा आदित्यका जो रूप मध्याह्नके पश्चात् और अपराह्णके पूर्व होता है वह प्रतिहार है। उसके उस रूपके अनुगामी गर्भ हैं। इसीसे वे ऊपरकी ओर आकृष्ट किये जानेपर नीचे नहीं गिरते, क्योंकि वे इस सामकी प्रतिहारभक्तिके पात्र हैं तथा आदित्यका जो रूप अपराह्णके पश्चात् और सूर्यास्तसे पूर्व होता है वह उपद्रव है। उसके उस रूपके अनुगामी वन्य पशु हैं। इसीसे वे पुरुषको देखकर भयवश अरण्य अथवा गुहामें भाग जाते हैं क्योंकि वे इस सामकी उपद्रवभक्तिके भागी हैं तथा आदित्यका जो रूप सूर्यास्तसे पूर्व होता है—वह निधन है। उसके उस रूपके अनुगत पितृगण हैं; इसीसे (श्राद्धकालमें) उन्हें (पितृ-पितामह आदि रूपसे दर्भपर) स्थापित करते हैं; क्योंकि वे पितृगण निश्चय ही इस सामकी निधनभक्तिके पात्र हैं। इसी प्रकार इस आदित्यरूप सात प्रकारके सामकी उपासना करते हैं॥ १—८॥

दशम खण्ड

मृत्युसे अतीत सप्तविध सामोपासना

अब निश्चय ही [यह बतलाया जाता है कि] अपने समान अक्षरोंवाले मृत्युसे अतीत सप्तविध सामकी उपासना करे। 'हिंकार' यह तीन अक्षरोंवाला है तथा 'प्रस्ताव' यह भी तीन अक्षरोंवाला है, अतः उसके समान है। 'आदि' यह दो अक्षरोंवाला नाम है और 'प्रतिहार' यह चार अक्षरोंवाला नाम है। इसमेंसे एक अक्षर निकालकर आदिमें मिलानेसे वे समान हो जाते हैं। 'उद्गीथ' यह तीन अक्षरोंका और 'उपद्रव' यह चार अक्षरोंका नाम है। ये दोनों तीन-तीन अक्षरोंमें तो समान हैं; किंतु एक अक्षर बच रहता है। अतः ('अक्षर' होनेके कारण) तीन अक्षरोंवाला होनेसे तो वह (एक) भी उनके समान ही है। 'निधन' यह नाम तीन अक्षरोंका है, अतः यह उनके समान ही है। वे ही ये बाईस अक्षर हैं। इक्कीस अक्षरोंद्वारा साधक आदित्यलोक प्राप्त करता है, क्योंकि इस लोकसे आदित्य निश्चय ही इक्कीसवाँ है। बाईसवें अक्षरद्वारा वह आदित्यसे परे उस दुःखहीन एवं शोकरहित लोकको जीत लेता है। [वह पुरुष] आदित्यलोककी जय प्राप्त करता है तथा उसे आदित्यविजयसे भी उत्कृष्ट जय प्राप्त होती है। जो इस उपासनाको इस प्रकार जाननेवाला होकर आत्मसंमित और मृत्युसे अतीत सप्तविध सामकी उपासना करता है—सामकी उपासना करता है॥ १—६॥

एकादश खण्ड

गायत्र-सामोपासना

मन हिंकार है, वाक् प्रस्ताव है, चक्षु उद्गीथ है, श्रोत्र प्रतिहार है और प्राण निधन है। यह गायत्रसंज्ञक साम प्राणोंमें प्रतिष्ठित है। वह, जो इस प्रकार गायत्रसंज्ञक सामको प्राणोंमें प्रतिष्ठित जानता है, प्राणवान् होता है, पूर्ण आयुका उपभोग करता है, प्रशस्त जीवनलाभ करता है, प्रजा और पशुओंद्वारा महान् होता है तथा कीर्तिके द्वारा भी महान् होता है। वह महान् मनस्वी होवे—यही उसका व्रत है॥ १-२॥

द्वादश खण्ड

रथन्तर-सामोपासना

अभिमन्थन करता है यह हिंकार है, धूम उत्पन्न होता है यह प्रस्ताव है, प्रज्वलित होता है यह उद्गीथ है, अङ्गार होते हैं यह प्रतिहार है तथा शान्त होने लगता है यह निधन है और सर्वथा शान्त हो जाता है यह भी निधन है। यह रथन्तरसाम अग्निमें प्रतिष्ठित है। वह, जो पुरुष इस प्रकार इस रथन्तरसामको अग्निमें अनुस्यूत जानता है, ब्रह्मतेजसे सम्पन्न और अन्नका भोक्ता होता है, पूर्ण जीवनका उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओंके कारण महान् होता है तथा कीर्तिके कारण महान् होता है। अग्निकी ओर मुख करके भक्षण न करे और न थूके ही—यह व्रत है॥ १-२॥

त्रयोदश खण्ड

वामदेव्य-सामोपासना

स्त्री-पुरुषका संकेत हिंकार है, पारस्परिक सन्तोष प्रस्ताव है, सहशयन उद्गीथ है, अभिमुखशयन प्रतिहार है, समासि निधन है, इस प्रकार जोड़ेसे वामदेव्यसामकी उपासना की जाती है। वह, जो पुरुष इस प्रकार मिथुनमें वामदेव्यसामको स्थित जानता है, सदा जोड़ेसे रहता है, उसका कभी वियोग नहीं होता, मिथुनीभावसे उसके सन्तान उत्पन्न होती है। वह पूर्ण आयुका उपभोग करता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओंके कारण महान् होता है तथा कीर्तिके कारण महान् होता है। किसी भी परस्त्रीका कभी कहींसे भी अपहरण न करे, कदापि व्यभिचारी न हो—यह व्रत है॥ १-२॥

चतुर्दश खण्ड

बृहत्सामोपासना

उदित होता हुआ सूर्य हिंकार है, उदित हुआ प्रस्ताव है, मध्याह्नकालिक सूर्य उद्गीथ है, अपराह्णकालिक प्रतिहार है और जो अस्तमित होनेवाला सूर्य है वह निधन है। यह बृहत्साम सूर्यमें स्थित है। वह पुरुष, जो इस प्रकार इस बृहत्सामको सूर्यमें स्थित जानता है, तेजस्वी और अन्नका भोग करनेवाला होता है। वह पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओंके कारण महान् होता है तथा कीर्तिके कारण भी महान् होता है। तपते हुए सूर्यकी निन्दा न करे—यह व्रत है॥ १-२॥

पञ्चदश खण्ड

वैरूप-सामोपासना

बादल एकत्रित होते हैं यह हिंकार है। मेघ उत्पन्न होता है यह प्रस्ताव है। जल बरसता है यह उद्गीथ है। बिजली चमकती और कड़कती है यह प्रतिहार है तथा वृष्टिका उपसंहार होता है यह निधन है। यह वैरूपसाम मेघमें अनुस्यूत है। वह पुरुष, जो इस प्रकार इस वैरूपसामको पर्जन्यमें अनुस्यूत जानता है, विरूप और सुरूप पशुओंका अवरोध करता है, पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओंके कारण महान् होता है तथा कीर्तिके कारण महान् होता है। बरसते हुए मेघकी निन्दा न करे—यह व्रत है॥ १-२॥

षोडश खण्ड

वैराज-सामोपासना

वसन्त हिंकार है, ग्रीष्म प्रस्ताव है, वर्षा उद्गीथ है, शरद् ऋतु प्रतिहार है, हेमन्त निधन है—यह वैराजसाम ऋतुओंमें अनुस्यूत है। वह पुरुष, जो इस प्रकार इस वैराजसामको ऋतुओंमें अनुस्यूत जानता है, प्रजा, पशु और ब्रह्मतेजके कारण शोभित होता है, पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओंके कारण महान् होता है तथा कीर्तिके कारण भी महान् होता है। ऋतुओंकी निन्दा न करे—यह व्रत है॥ १-२॥

सप्तदश खण्ड

शक्वरी-सामोपासना

पृथ्वी हिंकार है, अन्तरिक्ष प्रस्ताव है, द्युलोक उद्गीथ है, दिशाएँ प्रतिहार हैं और समुद्र निधन है—यह शक्वरीसाम लोकोंमें अनुस्यूत है। वह पुरुष, जो इस प्रकार इस शक्वरीसामको लोकोंमें अनुस्यूत जानता है, लोकवान् होता है। वह सम्पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओंके कारण महान् होता है तथा कीर्तिके कारण भी महान् होता है। लोकोंकी निन्दा न करे—यह व्रत है॥ १-२॥

अष्टादश खण्ड

रेवती-सामोपासना

बकरी हिंकार है, भेड़ें प्रस्ताव हैं, गौएँ उद्गीथ हैं, घोड़े प्रतिहार हैं और पुरुष निधन है—यह रेवतीसाम पशुओंमें अनुस्यूत है। वह पुरुष, जो इस प्रकार इस रेवतीसामको पशुओंमें अनुस्यूत जानता है, पशुमान् होता है। वह पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओंके कारण महान् होता है तथा कीर्तिके कारण भी महान् होता है। पशुओंकी निन्दा न करे—यह व्रत है॥ १-२॥

एकोनविंश खण्ड

यज्ञायज्ञीय-सामोपासना

लोम हिंकार है, त्वचा प्रस्ताव है, मांस उद्गीथ है, अस्थि प्रतिहार है और मज्जा निधन है। यह यज्ञायज्ञीय साम अङ्गोंमें अनुस्यूत है। वह पुरुष, जो इस प्रकार इस यज्ञायज्ञीय सामको अङ्गोंमें अनुस्यूत जानता है, अङ्गवान् होता है। वह अङ्गोंसे टेढ़ा-मेढ़ा नहीं होता, पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओंके कारण महान् होता है तथा कीर्तिके कारण भी महान् होता है। वर्षभरतक मांसभक्षण न करे—यह व्रत है, अथवा कभी भी मांसभक्षण न करे—ऐसा व्रत है॥ १-२॥

विंश खण्ड

राजन-सामोपासना

अग्नि हिंकार है, वायु प्रस्ताव है, आदित्य उद्गीथ है, नक्षत्र प्रतिहार हैं, चन्द्रमा निधन है—यह राजनसाम देवताओंमें अनुस्यूत है। वह पुरुष, जो इस प्रकार इस राजनसामको देवताओंमें अनुस्यूत

जानता है, उन्हीं देवताओंके सालोक्य, सार्ष्टित्व (तुल्य ऐश्वर्य) और सायुज्यको प्राप्त हो जाता है। वह पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओंके द्वारा महान् होता है तथा कीर्तिके द्वारा भी महान् होता है। ब्राह्मणोंकी निन्दा न करे—यह व्रत है॥ १-२॥

एकविंश खण्ड

सबमें अनुस्यूत सामकी उपासना

त्रयीविद्या हिंकार है, ये तीन लोक प्रस्ताव हैं, अग्नि, वायु और आदित्य ये उद्गीथ हैं। नक्षत्र, पक्षी और किरणें ये प्रतिहार हैं। सर्प, गन्धर्व और पितृगण—ये निधन हैं। यह सामोपासना सबमें अनुस्यूत है। वह, जो इस प्रकार सबमें अनुस्यूत इस सामको जानता है, सर्वरूप हो जाता है। इस विषयमें यह मन्त्र भी है—जो पाँच प्रकारके तीन-तीन बतलाये गये हैं, उनसे श्रेष्ठ तथा उनके अतिरिक्त और कोई नहीं है। जो उसे जानता है वह सब कुछ जानता है। उसे सभी दिशाएँ बलि समर्पित करती हैं। 'मैं सब कुछ हूँ' इस प्रकार उपासना करे—यह व्रत है, यह व्रत है॥ १—४॥

द्वाविंश खण्ड

अग्नि-सम्बन्धी उद्गीथ

सामके 'विनर्दि' नामक गानका वरण करता हूँ; वह पशुओंके लिये हितकर है और अग्निदेवतासम्बन्धी उद्गीथ है। प्रजापतिका उद्गीथ अनिरुक्त है, सोम निरुक्त है, वायुका मृदुल और श्लक्ष्ण (सरलतासे उच्चारण किये जानेयोग्य) है, इन्द्रका श्लक्ष्ण और बलवान् है, बृहस्पतिका क्रौञ्च (क्रौञ्च-पक्षीके शब्दके समान) है और वरुणका अपध्वान्त (भ्रष्ट) है। इन सभी उद्गीथोंका सेवन करे; केवल वरुणसम्बन्धी उद्गीथका ही परित्याग कर दे। मैं देवताओंके लिये अमृतत्वका आगान (साधन) करूँ—इस प्रकार चिन्तन करते हुए आगान करे। पितृगणके लिये स्वधा, मनुष्योंके लिये आशा (उनकी इष्ट वस्तुओं), पशुओंके लिये तृण और जल, यजमानके लिये स्वर्गलोक और अपने लिये अन्नका आगान करूँ—इस प्रकार इनका मनसे ध्यान करते हुए प्रमादरहित होकर स्तुति करे। सम्पूर्ण स्वर इन्द्रके आत्मा हैं, समस्त ऊष्मवर्ण प्रजापतिके आत्मा हैं, समस्त स्पर्शवर्ण मृत्युके आत्मा हैं। [इस प्रकार जाननेवाले] उस उद्गाताको यदि कोई पुरुष स्वरोंके उच्चारणमें दोष प्रदर्शित करे तो वह उससे कहे कि 'मैं इन्द्रके शरणागत हूँ वही तुझे इसका उत्तर देगा।' और यदि कोई इसे ऊष्मवर्णोंके उच्चारणमें दोष प्रदर्शित करे तो उससे कहे कि 'मैं प्रजापतिके शरणागत था वही तेरा मर्दन करेगा।' और यदि कोई इसे स्पर्शोंके उच्चारणमें उलाहना दे तो उससे कहे कि 'मैं मृत्युकी शरणको प्राप्त था, वही तुझे दग्ध करेगा।' सम्पूर्ण स्वर घोषयुक्त और बलयुक्त उच्चारण किये जाने चाहिये; अतः [उनका उच्चारण करते समय] 'मैं इन्द्रमें बलका आधान करूँ' ऐसा [चिन्तन करना चाहिये]। सारे ऊष्मवर्ण अग्रस्त, अनिरस्त एवं विवृतरूपसे उच्चारण किये जाते हैं [अतः उन्हें बोलते समय ऐसा चिन्तन करना चाहिये कि] 'मैं प्रजापतिको आत्मदान करूँ।' समस्त स्पर्शवर्णोंको एक-दूसरेसे तनिक भी मिलाये बिना ही बोलना चाहिये और उस समय 'मैं मृत्युसे अपना परिहार करूँ' [ऐसा चिन्तन करना चाहिये]॥ १—५॥

त्रयोविंश खण्ड

धर्मके तीन स्कन्ध, ओंकारकी सर्वरूपता

धर्मके तीन स्कन्ध हैं—यज्ञ, अध्ययन और दान—यह पहला स्कन्ध है। तप ही दूसरा स्कन्ध है। आचार्यकुलमें रहनेवाला ब्रह्मचारी, जो आचार्यकुलमें अपने शरीरको अत्यन्त क्षीण कर देता है, तीसरा

स्कन्ध है। ये सभी पुण्यलोकके भागी होते हैं। ब्रह्ममें सम्यक् प्रकारसे स्थित [चतुर्थाश्रमी संन्यासी] अमृतत्वको प्राप्त होता है। प्रजापतिने लोकोंके उद्देश्यसे ध्यानरूप तप किया। उन अभितप्त लोकोंसे त्रयी विद्याकी उत्पत्ति हुई तथा उस अभितप्त त्रयी विद्यासे '**भूः भुवः** और **स्वः**' ये अक्षर उत्पन्न हुए। [फिर प्रजापतिने] उन अक्षरोंका आलोचन किया। उन आलोचित अक्षरोंसे ओङ्कार उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार शङ्कुओं (नसों) द्वारा सम्पूर्ण पत्ते व्याप्त रहते हैं उसी प्रकार ओङ्कारसे सम्पूर्ण वाणी व्याप्त है। ओङ्कार ही यह सब कुछ है—ओङ्कार ही यह सब कुछ है॥ १—३॥

चतुर्विंश खण्ड

तीनों कालका सवन

ब्रह्मवादी कहते हैं कि प्रातःसवन वसुओंका है, मध्याह्नसवन रुद्रोंका है तथा तृतीय सवन आदित्य और विश्वेदेवोंका है तो फिर यजमानका लोक कहाँ है? जो यजमान उस लोकको नहीं जानता वह किस प्रकार यज्ञानुष्ठान करेगा? अतः उसे जाननेवाला ही यज्ञ करेगा?॥ १-२॥

प्रातरनुवाकका आरम्भ करनेसे पूर्व वह (यजमान) गार्हपत्याग्निके पीछेकी ओर उत्तराभिमुख बैठकर वसुदेवतासम्बन्धी सामका गान करता है। [हे अग्ने!] तुम इस लोकका द्वार खोल दो; जिससे कि हम राज्यप्राप्तिके लिये तुम्हारा दर्शन कर लें। तदनन्तर [यजमान इस मन्त्रद्वारा] हवन करता है—पृथिवीमें रहनेवाले इहलोकनिवासी अग्निदेवको नमस्कार है। मुझ यजमानको तुम [पृथिवी] लोककी प्राप्ति कराओ। यह निश्चय ही यजमानका लोक है, मैं इसे प्राप्त करनेवाला हूँ। इस लोकमें यजमान 'मैं आयु समाप्त होनेके अनन्तर [पुण्यलोकको प्राप्त होऊँगा] स्वाहा'—ऐसा कहकर हवन करता है, और 'परिघ (अर्गला) को नष्ट करो' ऐसा कहकर उत्थान करता है। वसुगण उसे प्रातःसवन प्रदान करते हैं॥ ३—६॥

मध्याह्नसवनका आरम्भ करनेसे पूर्व यजमान दक्षिणाग्निके पीछे उत्तराभिमुख बैठकर रुद्रदेवता-सम्बन्धी सामका गान करता है। [हे वायो!] तुम अन्तरिक्षलोकका द्वार खोल दो, जिससे कि वैराज्यपदकी प्राप्तिके लिये हम तुम्हारा दर्शन कर सकें। तदनन्तर [यजमान इस मन्त्रद्वारा] हवन करता है—'अन्तरिक्षमें रहनेवाले अन्तरिक्षलोकनिवासी वायुदेवको नमस्कार है। मुझ यजमानको तुम [अन्तरिक्ष—] लोककी प्राप्ति कराओ। यह निश्चय ही यजमानका लोक है; मैं इसे प्राप्त करनेवाला हूँ। यहाँ यजमान, 'मैं आयु समाप्त होनेपर [अन्तरिक्षलोक प्राप्त करूँगा] स्वाहा' ऐसा कहकर हवन करता है और 'लोकद्वारकी अर्गलाको दूर करो' ऐसा कहकर उत्थान करता है। रुद्रगण उसे मध्याह्नसवन प्रदान करते हैं॥ ७—१०॥

तृतीय सवनका आरम्भ करनेसे पूर्व यजमान आहवनीयाग्निके पीछे उत्तराभिमुख बैठकर आदित्य और विश्वेदेवसम्बन्धी सामका गान करता है। लोकका द्वार खोल दो, जिससे हम स्वाराज्यप्राप्तिके लिये तुम्हारा दर्शन कर सकें। यह आदित्यसम्बन्धी साम है; अब विश्वेदेवसम्बन्धी साम कहते हैं—लोकका द्वार खोल दो, जिससे हम साम्राज्यप्राप्तिके लिये तुम्हारा दर्शन कर सकें। तत्पश्चात् [यजमान इस मन्त्रद्वारा] हवन करता है—स्वर्गमें रहनेवाले द्युलोकनिवासी आदित्योंको और विश्वेदेवोंको नमस्कार है। मुझ यजमानको तुम पुण्यलोककी प्राप्ति कराओ। यह निश्चय ही यजमानका लोक है; मैं इसे प्राप्त करनेवाला हूँ। यहाँ यजमान 'आयु समाप्त होनेपर [मैं इसे प्राप्त करूँगा] स्वाहा'—ऐसा कहकर हवन करता है और 'लोकद्वारकी अर्गलाको दूर करो'—ऐसा कहकर उत्थान करता है। उस (यजमान)-को आदित्य और विश्वेदेव तृतीय सवन प्रदान करते हैं। जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार जानता है वह निश्चय ही यज्ञकी मात्रा (यज्ञके यथार्थ स्वरूप)-को जानता है॥ ११—१६॥

द्वितीय अध्याय समाप्त॥ २॥

ॐ

तृतीय अध्याय

प्रथम खण्ड

आदित्यकी मधुरूपमें कल्पना

ॐ यह आदित्य निश्चय ही देवताओंका मधु है। द्युलोक ही उसका तिरछा बाँस है (जिसपर कि वह लटका हुआ है), अन्तरिक्ष छत्ता है और किरणें [उसमें रहनेवाले] मक्खियोंके बच्चे हैं। उस आदित्यकी जो पूर्वदिशाकी किरणें हैं, वे ही इस (अन्तरिक्षरूप छत्ते)-के पूर्वदिशावर्ती छिद्र हैं। ऋक् ही मधुकर हैं, ऋग्वेद ही पुष्प हैं, वे सोम आदि अमृत ही जल हैं। उन इन ऋक् (रूप मधुकरों)-ने ही इस ऋग्वेदका अभिताप किया। उस अभितप्त ऋग्वेदसे यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ। वह (यश आदि रस) विशेषरूपसे गया। उसने [जाकर] आदित्यके [पूर्व] भागमें आश्रय लिया। यह जो आदित्यका लाल रूप है, वही यह (रस) है॥ १—४॥

द्वितीय खण्ड

आदित्यकी दक्षिणस्थित किरणोंमें मधुनाडी-दृष्टि

तथा इसकी जो दक्षिण दिशाकी किरणें हैं, वे ही इसकी दक्षिणदिशावर्तिनी मधुनाडियाँ हैं, यजुःश्रुतियाँ ही मधुकर हैं, यजुर्वेद ही पुष्प है तथा वह [सोमादिरूप] अमृत ही जल है। उन इन यजुःश्रुतियोंने इस यजुर्वेदका अभिताप किया। उस अभितप्त यजुर्वेदसे यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ। उस रसने विशेषरूपसे गमन किया और आदित्यके [दक्षिण] भागमें आश्रय लिया। यह जो आदित्यका शुक्ल रूप है, यह वही है॥ १—३॥

तृतीय खण्ड

पश्चिम ओरकी किरणोंमें मधुनाडी-दृष्टि

तथा ये जो इसकी पश्चिम ओरकी रश्मियाँ हैं, वे ही इसकी पश्चिमीय मधुनाडियाँ हैं। सामश्रुतियाँ ही मधुकर हैं, सामवेदविहित कर्म ही पुष्प है तथा वह [सोमादिरूप] अमृत ही जल है। उन इन सामश्रुतियोंने ही इस सामवेदविहित कर्मका अभिताप किया। उस अभितप्त सामवेदसे ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ। उस रसने विशेषरूपसे गमन किया और आदित्यके [पश्चिम] भागमें आश्रय लिया। यह जो आदित्यका कृष्ण तेज है, यह वही है॥ १—३॥

चतुर्थ खण्ड

उत्तर दिशाकी किरणोंमें मधुनाडी-दृष्टि

तथा इसकी जो उत्तर दिशाकी किरणें हैं, वे ही इसकी उत्तर दिशाकी मधुनाडियाँ हैं। अथर्वाङ्गिरसश्रुतियाँ ही मधुकर हैं, इतिहास-पुराण ही पुष्प हैं तथा वह [सोमादिरूप] अमृत ही जल है। उन इन अथर्वाङ्गिरस-श्रुतियोंने ही इस इतिहास-पुराणको अभितप्त किया। उस अभितप्त हुए [इतिहास-पुराणरूप पुष्प]-से ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रसकी उत्पत्ति हुई। उस रसने विशेषरूपसे गमन किया और आदित्यके [उत्तर] भागमें आश्रय लिया। यह जो आदित्यका अत्यन्त कृष्ण रूप है, यह वही है॥ १—३॥

पञ्चम खण्ड

ऊर्ध्वरश्मियोंमें मधुनाडी-दृष्टि

तथा इसकी जो ऊर्ध्वरश्मियाँ हैं, वे ही इसकी ऊपरकी ओरकी मधुनाडियाँ हैं। गुह्य आदेश ही मधुकर हैं, [प्रणवरूप] ब्रह्म ही पुष्प है तथा वह [सोमादिरूप] अमृत ही जल है। उन इन गुह्य आदेशोंने ही इस [प्रणवसंज्ञक] ब्रह्मको अभितप्त किया। उस अभितप्त ब्रह्मसे ही यश, तेज, इन्द्रिय, वीर्य और अन्नाद्यरूप रस उत्पन्न हुआ। उस रसने विशेषरूपसे गमन किया और वह आदित्यके [ऊर्ध्व] भागमें आश्रित हुआ। यह जो आदित्यके मध्यमें क्षुब्ध-सा होता है यही वह (मधु) है। वे ये [पूर्वोक्त लोहितादि रूप] ही रसोंके रस हैं, वेद ही रस हैं और ये उनके भी रस हैं। वे ही ये अमृतोंके अमृत हैं—वेद ही अमृत हैं और ये उनके भी अमृत हैं॥ १—४॥

षष्ठ खण्ड

वसुओंके जीवनाधार प्रथम अमृतकी उपासना

इनमें जो पहला अमृत है, उससे वसुगण अग्निप्रधान होकर जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते ही हैं, वे इस अमृतको देखकर ही तृप्त हो जाते हैं। वे देवगण इस रूपको लक्षित करके ही उदासीन हो जाते हैं और फिर इसीसे उत्साहित होते हैं। वह, जो इस प्रकार इस अमृतको जानता है, वसुओंमेंसे ही कोई एक होकर अग्निकी ही प्रधानतासे इसे देखकर तृप्त हो जाता है। वह इस रूपको लक्ष्य करके ही उदासीन होता है और इस रूपसे ही उत्साहित होता है। जितने समयमें आदित्य पूर्व दिशासे उदित होता है और पश्चिम दिशामें अस्त होता है, उतनी ही देर वह वसुओंके आधिपत्य और स्वाराज्यको प्राप्त होता है॥ १-४॥

सप्तम खण्ड

रुद्रोंके जीवनाधार द्वितीय अमृतकी उपासना

अब, जो दूसरा अमृत है, रुद्रगण इन्द्रप्रधान होकर उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृतको देखकर ही तृप्त हो जाते हैं। वे इस रूपको लक्षित करके ही उदासीन हो जाते हैं और इसीसे उद्यमशील होते हैं। वह, जो इस प्रकार इस अमृतको जानता है, रुद्रोंमेंसे ही कोई एक होकर इन्द्रकी ही प्रधानतासे इस अमृतको ही देखकर तृप्त हो जाता है। वह इस रूपसे ही उदासीन हो जाता है और इस रूपसे ही उद्यमशील होता है। जितने समयमें आदित्य पूर्वसे उदित होता और पश्चिममें अस्त होता है, उससे दुगुने समयमें वह दक्षिणसे उदित होता है और उत्तरमें अस्त हो जाता है। इतने समयपर्यन्त वह रुद्रोंके ही आधिपत्य एवं स्वाराज्यको प्राप्त होता है॥ १—४॥

अष्टम खण्ड

आदित्योंके जीवनाधार तृतीय अमृतकी उपासना

तदनन्तर जो तीसरा अमृत है, आदित्यगण वरुणप्रधान होकर उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृतको देखकर ही तृप्त हो जाते हैं। वे इस रूपको ही लक्षित करके उदासीन होते हैं और इसीसे उद्यमशील हो जाते हैं। वह, जो इस अमृतको जानता है, आदित्योंमेंसे ही कोई एक होकर वरुणकी ही प्रधानतासे इस अमृतको देखकर तृप्त हो जाता है। वह इस रूपसे ही उदासीन होता है और इसीसे उद्योगी हो जाता है। वह आदित्य जितने समयमें दक्षिणसे उदित होता और उत्तरमें अस्त होता है, उससे दूने समयमें पश्चिमसे उदित होता और पूर्वमें अस्त होता है। इतने समय वह आदित्योंके ही आधिपत्य और स्वाराज्यको प्राप्त होता है॥ १—४॥

नवम खण्ड

मरुतोंके जीवनाधार चतुर्थ अमृतकी उपासना

तथा जो चौथा अमृत है, मरुद्गण सोमकी प्रधानतासे उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृतको देखकर ही तृप्त हो जाते हैं। वे इस रूपको लक्षित करके ही उदासीन होते हैं और इसीसे उद्यमशील हो जाते हैं। वह, जो इस अमृतको जानता है, मरुतोंमेंसे ही कोई एक होकर सोमकी प्रधानतासे ही इस अमृतको देखकर तृप्त हो जाता है। वह इस रूपसे ही उदासीन होता है और इस रूपसे ही उत्साहित होता है। वह आदित्य जितने समयमें पश्चिमसे उदित होता और पूर्वमें अस्त होता है, उससे दूनी देरमें उत्तरसे उदित होता और दक्षिणमें अस्त होता है। इतने काल वह मरुद्गणके ही आधिपत्य और स्वाराज्यको प्राप्त होता है॥ १—४॥

दशम खण्ड

साध्योंके जीवनाधार पञ्चम अमृतकी उपासना

तथा जो पाँचवाँ अमृत है, साध्यगण ब्रह्माकी प्रधानतासे उसके आश्रित जीवन धारण करते हैं। देवगण न तो खाते हैं और न पीते हैं, वे इस अमृतको देखकर ही तृप्त हो जाते हैं। वे इस रूपको लक्षित करके ही उदासीन होते हैं और इसीसे उद्यमशील हो जाते हैं। वह, जो इस प्रकार इस अमृतको जानता है, साध्यगणमेंसे ही कोई एक होकर ब्रह्माकी ही प्रधानतासे इस अमृतको ही देखकर तृप्त हो जाता है। वह इस रूपको लक्ष्य करके ही उदासीन होता है और इस रूपसे ही उत्साहित हो जाता है। वह आदित्य जितने समयमें उत्तरसे उदित होता है और दक्षिणमें अस्त होता है, उससे दूने समयतक ऊपरकी ओर उदित होता है और नीचेकी ओर अस्त होता है। इतने कालतक वह साध्योंके ही आधिपत्य और स्वाराज्यको प्राप्त होता है॥ १—४॥

एकादश खण्ड

मधुविज्ञान तथा ब्रह्मविज्ञानके अधिकारी

फिर उसके पश्चात् वह ऊर्ध्वगत होकर उदित होनेपर फिर न तो उदित होगा और न अस्त ही होगा; बल्कि अकेला ही मध्यमें स्थित रहेगा। उसके विषयमें यह श्लोक है। वहाँ निश्चय ही ऐसा नहीं होता। वहाँ (सूर्यका) न कभी अस्त होता है और न उदय होता है। हे देवगण! इस सत्यके द्वारा मैं ब्रह्मसे विरुद्ध न होऊँ। जो इस प्रकार इस ब्रह्मोपनिषद् (वेदरहस्य)-को जानता है उसके लिये न तो सूर्यका उदय होता है और न अस्त होता है। उसके लिये सर्वदा दिन ही रहता है। वह यह मधुज्ञान ब्रह्माने प्रजापतिसे कहा था, प्रजापतिने मनुको सुनाया और मनुने प्रजावर्गके प्रति कहा तथा यह ब्रह्मविज्ञान अपने ज्येष्ठ पुत्र अरुणनन्दन उद्दालकको उसके पिताने सुनाया था। अतः इस ब्रह्मविज्ञानका पिता अपने ज्येष्ठ पुत्रको अथवा सुयोग्य शिष्यको उपदेश करे। किसी दूसरेको नहीं बतलावे, यद्यपि इस आचार्यको यह समुद्र-परिवेष्टित और धनसे परिपूर्ण सारी पृथिवी दे [तो भी किसी दूसरेको इस विद्याका उपदेश न करे, क्योंकि] उससे यही अधिकतर फल देनेवाला है, यही अधिकतर फल देनेवाला है॥ १-६॥

द्वादश खण्ड

गायत्रीकी सर्वरूपता

गायत्री ही ये सब भूत—प्राणिवर्ग हैं। जो कुछ भी ये स्थावर-जंगम प्राणी हैं, वे गायत्री ही हैं। वाक् ही गायत्री है और वाक् ही ये सब प्राणी हैं; क्योंकि यही गायत्री (उनका नामोच्चारण करती) और उनकी

[भय आदिसे] रक्षा करती है। जो वह गायत्री है वह यही है, जो कि यह पृथिवी है; क्योंकि इसीमें ये सब भूत स्थित हैं और इसीका वे कभी अतिक्रमण नहीं करते। जो भी यह पृथिवी है वह यही है जो कि इस पुरुषमें शरीर है; क्योंकि इसीमें ये प्राण स्थित हैं और इसीको वे कभी नहीं छोड़ते। जो भी इस पुरुषमें शरीर है वह यही है, जो कि इस अन्तःपुरुषमें हृदय है; क्योंकि इसीमें ये प्राण प्रतिष्ठित हैं और इसीका अतिक्रमण नहीं करते। वह यह गायत्री चार चरणोंवाली और छः प्रकारकी है। वह यह [गायत्र्याख्य ब्रह्म] मन्त्रोंद्वारा प्रकाशित किया गया है। [ऊपर जो कुछ कहा गया है] उतनी ही इस (गायत्र्याख्य ब्रह्म)-की महिमा है; तथा [निर्विकार] पुरुष इससे भी उत्कृष्ट है। सम्पूर्ण भूत इसका एक पाद हैं और इसका [पुरुषसंज्ञक] त्रिपाद् अमृत प्रकाशमय स्वात्मामें स्थित है। जो भी वह [त्रिपाद् अमृतरूप] ब्रह्म है वह यही है, जो कि यह पुरुषसे बाहर आकाश है और जो भी यह पुरुषसे बाहर आकाश है वह यही है, जो कि यह पुरुषके भीतर आकाश है तथा जो भी यह पुरुषके भीतर आकाश है वह यही है, जो कि हृदयके अन्तर्गत आकाश है। वह यह हृदयाकाश पूर्ण और कहीं भी प्रवृत्त न होनेवाला है। जो पुरुष ऐसा जानता है, वह पूर्ण और कहीं प्रवृत्त न होनेवाली सम्पत्ति प्राप्त करता है॥ १—९॥

त्रयोदश खण्ड

पञ्चप्राणोंकी उपासना

उस इस प्रसिद्ध हृदयके पाँच देवसुषि हैं। इसका जो पूर्वदिशावर्ती सुषि (छिद्र) है वह प्राण है; वह चक्षु है, वह आदित्य है, वही यह तेज और अन्नाद्य है—इस प्रकार उपासना करे। जो इस प्रकार जानता है [अर्थात् इस प्रकार इनकी उपासना करता है] वह तेजस्वी और अन्नका भोक्ता होता है तथा इसका जो दक्षिण छिद्र है वह व्यान है, वह श्रोत्र है, वह चन्द्रमा है और वही यह श्री एवं यश है—इस प्रकार उसकी उपासना करे। जो ऐसा जानता है वह श्रीमान् और यशस्वी होता है तथा इसका जो पश्चिम छिद्र है वह अपान है, वह वाक् है, वह अग्नि है और वही यह ब्रह्मतेज एवं अन्नाद्य है—इस प्रकार उसकी उपासना करे। जो ऐसा जानता है वह ब्रह्मतेजस्वी और अन्नका भोक्ता होता है तथा इसका जो उत्तरी छिद्र है वह समान है, वह मन है, वह मेघ है और वही यह कीर्ति तथा व्युष्टि (देहका लावण्य) है—इस प्रकार उसकी उपासना करे। जो इस प्रकार जानता है वह कीर्तिमान् और कान्तिमान् होता है तथा इसका जो ऊर्ध्व छिद्र है वह उदान है, वह वायु है, वह आकाश है और वही यह ओज और तेज है—इस प्रकार उसकी उपासना करे। जो इस प्रकार जानता है वह ओजस्वी और तेजस्वी होता है। वे ये पाँच ब्रह्मपुरुष स्वर्गलोकके द्वारपाल हैं। वह जो कोई भी स्वर्गलोकके द्वारपाल इन पाँच ब्रह्मपुरुषोंको जानता है उसके कुलमें वीर उत्पन्न होता है। जो इस प्रकार स्वर्गलोकके द्वारपाल इन पाँच पुरुषोंको जानता है वह स्वर्गलोकको प्राप्त होता है तथा इस द्युलोकसे परे जो परम ज्योति विश्वके पृष्ठपर यानी सबके ऊपर, जिनसे उत्तम कोई दूसरा लोक नहीं है ऐसे उत्तम लोकोंमें प्रकाशित हो रही है वह निश्चय यही है जो कि इस पुरुषके भीतर ज्योति है। उस इस (हृदयस्थित पुरुष)-का यही दर्शनोपाय है जब कि [मनुष्य] इस शरीरमें स्पर्शद्वारा उष्णताको जानता है तथा यही उसका श्रवणोपाय है जब कि यह कानोंको मूँदकर निनद (रथके घोष), नदथु (बैलके डकराने) और जलते हुए अग्निके शब्दके समान श्रवण करता है, वह यह ज्योति दृष्ट और श्रुत है—इस प्रकार इसकी उपासना करे। जो उपासक ऐसा जानता है [इस प्रकार उपासना करता है] वह दर्शनीय और विश्रुत (विख्यात) होता है॥ १—८॥

चतुर्दश खण्ड

जगत्‌की एवं आत्माकी ब्रह्मरूपमें उपासना

यह सारा जगत् निश्चय ब्रह्म ही है, यह उसीसे उत्पन्न होनेवाला, उसीमें लीन होनेवाला और उसीमें चेष्टा करनेवाला है—इस प्रकार शान्त [राग-द्वेषरहित] होकर उपासना करे; क्योंकि पुरुष निश्चय ही क्रतुमय—निश्चयात्मक है, इस लोकमें पुरुष जैसे निश्चयवाला होता है वैसा ही यहाँसे मरकर जानेपर होता है। अतः उसे [पुरुषको] निश्चय करना चाहिये। [वह ब्रह्म] मनोमय, प्राणशरीर, प्रकाशस्वरूप, सत्यसंकल्प, आकाशशरीर, सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, इस सम्पूर्ण जगत्‌को सब ओरसे व्याप्त करनेवाला, वाक्‌रहित और संभ्रमशून्य है, हृदयकमलके भीतर यह मेरा आत्मा धानसे, यवसे, सरसोंसे, श्यामाकसे अथवा श्यामाकतण्डुलसे भी सूक्ष्म है तथा हृदयकमलके भीतर यह मेरा आत्मा पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक अथवा इन सब लोकोंकी अपेक्षा भी बड़ा है जो सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगन्ध, सर्वरस, इस सबको सब ओरसे व्याप्त करनेवाला, वाक्‌रहित और सम्भ्रमशून्य है वह मेरा आत्मा हृदय-कमलके मध्यमें स्थित है। यही ब्रह्म है, इस शरीरसे मरकर जानेपर मैं इसीको प्राप्त होऊँगा। जिसका ऐसा निश्चय है और जिसे इस विषयमें कोई सन्देह भी नहीं है। [उसे इसी ब्रह्मभावकी ही प्राप्ति होती है] ऐसा शाण्डिल्यने कहा है॥ १—४॥

पञ्चदश खण्ड

विराट्‌रूप कोशकी उपासना

अन्तरिक्ष जिसका उदर है, वह कोश पृथिवीरूप मूलवाला है। वह जीर्ण नहीं होता। दिशाएँ इसके कोण हैं, आकाश ऊपरका छिद्र है। वह यह कोश वसुधान है। उसीमें यह सारा विश्व स्थित है। उस कोशकी पूर्व दिशा 'जुहू' नामवाली है, दक्षिण दिशा 'सहमाना' नामकी है, पश्चिम दिशा 'राज्ञी' नामवाली है तथा उत्तर दिशा 'सुभूता' नामकी है। उन दिशाओंका वायु वत्स है। वह, जो इस प्रकार इस वायुको दिशाओंके वत्सरूपसे जानता है, पुत्रके निमित्तसे रोदन नहीं करता। वह मैं इस प्रकार इस वायुको दिशाओंके वत्सरूपसे जानता हूँ; अतः मैं पुत्रके कारण न रोऊँ। मैं अमुक-अमुक अमुकके सहित अविनाशी कोशकी शरण हूँ; अमुक-अमुक अमुकके सहित प्राणकी शरण हूँ; अमुक-अमुक अमुकके सहित भूःकी शरण हूँ; अमुक-अमुक अमुकके सहित भुवःकी शरण हूँ; अमुक-अमुक अमुकके सहित स्वःकी शरण हूँ।* वह मैंने जो कहा कि 'मैं प्राणकी शरण हूँ' सो यह जो कुछ सम्पूर्ण भूतसमुदाय है प्राण ही है, उसीकी मैं शरण हूँ तथा मैंने जो कहा है कि 'मैं भूःकी शरण हूँ' इससे मैंने यही कहा है कि 'मैं पृथिवीकी शरण हूँ, अन्तरिक्षकी शरण हूँ और द्युलोककी शरण हूँ' फिर मैंने जो कहा कि 'मैं भुवःकी शरण हूँ' इससे यह कहा गया है कि 'मैं अग्निकी शरण हूँ, वायुकी शरण हूँ और आदित्यकी शरण हूँ' तथा मैंने जो कहा कि 'मैं स्वःकी शरण हूँ' इससे 'मैं ऋग्वेदकी शरण हूँ, यजुर्वेदकी शरण हूँ और सामवेदकी शरण हूँ' यही मैंने कहा है॥ १—७॥

षोडश खण्ड

पुरुषकी यज्ञरूपमें उपासना

निश्चय पुरुष ही यज्ञ है। उसके (उसकी आयुके) जो चौबीस वर्ष हैं, वे प्रातःसवन हैं। गायत्री चौबीस अक्षरोंवाली है और प्रातःसवन गायत्री-छन्दसे संबद्ध है। उस इस प्रातःसवनके वसुगण अनुगत हैं। प्राण ही वसु हैं, क्योंकि ये ही इस सबको बसाये हुए हैं। यदि इस प्रातःसवनसम्पन्न आयुमें उसे कोई कष्ट पहुँचावे तो उसे इस प्रकार कहना चाहिये, 'हे प्राणरूप वसुगण! मेरे इस प्रातःसवनको

* इसमें जहाँ-जहाँ 'अमुक' शब्द आया है, वहाँ अपने पुत्रके नामको उच्चारण करना चाहिये।

माध्यन्दिनसवनके साथ एकरूप कर दो; यज्ञस्वरूप मैं आप प्राणरूप वसुओंके मध्यमें विलुप्त (नष्ट) न होऊँ।' तब उस कष्टसे मुक्त होकर वह नीरोग हो जाता है॥ १-२॥

इसके पश्चात् जो चौवालीस वर्ष हैं, वे माध्यन्दिनसवन हैं। त्रिष्टुप्-छन्द चौवालीस अक्षरोंवाला है और माध्यन्दिनसवन त्रिष्टुप्-छन्दसे सम्बद्ध है। उस माध्यन्दिनसवनके रुद्रगण अनुगत हैं। प्राण ही रुद्र हैं, क्योंकि ये ही इस सम्पूर्ण प्राणिसमुदायको रुलाते हैं। यदि उस यज्ञकर्ताको इस आयुमें कोई [रोगादि] संतप्त करे तो उसे इस प्रकार कहना चाहिये, 'हे प्राणरूप रुद्रगण! मेरे इस मध्याह्नकालिक सवनको तृतीय सवनके साथ एकीभूत कर दो। यज्ञस्वरूप मैं प्राणरूप रुद्रोंके मध्यमें कभी विच्छिन्न (नष्ट) न होऊँ।' ऐसा कहनेसे वह उस कष्टसे छूट जाता है और नीरोग हो जाता है॥ ३-४॥

इसके पश्चात् जो अड़तालीस वर्ष हैं, वे तृतीय सवन हैं। जगती-छन्द अड़तालीस अक्षरोंवाला है तथा तृतीय सवन जगती-छन्दसे सम्बन्ध रखता है। इस सवनके आदित्यगण अनुगत हैं। प्राण ही आदित्य हैं, क्योंकि ये ही इस सम्पूर्ण विषयजातको ग्रहण करते हैं। उस उपासकको यदि इस आयुमें कोई [रोगादि] संतप्त करे तो उसे इस प्रकार कहना चाहिये, 'हे प्राणरूप आदित्यगण! मेरे इस तृतीय सवनको आयुके साथ एकीभूत कर दो। यज्ञस्वरूप मैं प्राणरूप आदित्योंके मध्यमें विनष्ट न होऊँ।' ऐसा कहनेसे वह उस कष्टसे मुक्त होकर नीरोग हो जाता है॥ ५-६॥

इस प्रसिद्ध विद्याको जाननेवाले ऐतरेय महिदासने कहा था—'[अरे रोग!] तू मुझे क्यों कष्ट देता है, जो मैं कि इस रोगद्वारा मृत्युको प्राप्त नहीं हो सकता।' वह एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहा था; जो इस प्रकार इस सवन-विद्याको जानता है वह (नीरोग होकर) एक सौ सोलह वर्ष जीवित रहता है॥ ७॥

सप्तदश खण्ड

आत्मयज्ञके अन्य अङ्ग

वह [पुरुष] जो भोजन करनेकी इच्छा करता है, जो पीनेकी इच्छा करता है और जो रममाण (प्रसन्न) नहीं होता—वही इसकी दीक्षा है। फिर वह जो खाता है, जो पीता है और जो रतिका अनुभव करता है—वह उपसदोंकी सदृशताको प्राप्त होता है तथा वह जो हँसता है, जो भक्षण करता है और जो मैथुन करता है—वे सब स्तुतशस्त्रकी ही समानताको प्राप्त होते हैं तथा जो तप, दान, आर्जव (सरलता), अहिंसा और सत्यवचन हैं, वे ही इसकी दक्षिणा हैं। इसीसे कहते हैं कि 'प्रसूता होगी' अथवा 'प्रसूता हुई' वह इसका पुनर्जन्म ही है तथा मरण ही अवभृथस्नान है। घोर आङ्गिरस ऋषिने देवकीपुत्र कृष्णको यह यज्ञदर्शन सुनाकर, जिससे कि वह अन्य विद्याओंके विषयमें तृष्णाहीन हो गया था, कहा—'उसे अन्तकालमें इन तीन मन्त्रोंका जप करना चाहिये (१) तू अक्षित (अक्षय) है, (२) अच्युत (अविनाशी) है और (३) अति सूक्ष्म प्राण है।' तथा इसके विषयमें ये दो ऋचाएँ हैं। ('**आदित्यवत्सस्य रेतसः**' यह एक मन्त्र है और '**उद्वयं तमसस्परि....**' इत्यादि दूसरा है। इनमें पहला मन्त्र इस प्रकार है—'**आदित्यवत्सस्य रेतसो ज्योतिः पश्यन्ति वासरम्। परो यदिध्यते दिवि**' इसका अर्थ यह है—) पुरातन कारणका प्रकाश देखते हैं; यह सर्वत्र व्याप्त प्रकाश, जो परब्रह्ममें स्थित परम तेज देदीप्यमान है, उसका है। [अब '**उद्वयं तमसस्परि**' इत्यादि दूसरे मन्त्रका अर्थ करते हैं—] अज्ञानरूप अन्धकारसे अतीत उत्कृष्ट ज्योतिको देखते हुए तथा आत्मीय उत्कृष्ट तेजको देखते हुए हम सम्पूर्ण देवोंमें प्रकाशवान् सर्वोत्तम ज्योतिःस्वरूप सूर्यको प्राप्त हुए॥ १—७॥

अष्टादश खण्ड

मन और आकाशकी ब्रह्मरूपमें उपासना

'मन ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करे। यह अध्यात्मदृष्टि है तथा 'आकाश ब्रह्म है' यह अधिदैवत दृष्टि है। इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनोंका उपदेश किया गया। वह यह (मन:संज्ञक) ब्रह्म चार पादोंवाला है। वाक् पाद है, प्राण पाद है, चक्षु पाद है और श्रोत्र पाद है। यह अध्यात्म है। अब अधिदैवत कहते हैं—अग्नि पाद है, वायु पाद है, आदित्य पाद है और दिशाएँ पाद हैं। इस प्रकार अध्यात्म और अधिदैवत दोनोंका उपदेश किया जाता है। वाक् ही ब्रह्मका चौथा पाद है; वह अग्निरूप ज्योतिसे दीप्त होता है और तपता है। जो ऐसा जानता है वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेजके कारण देदीप्यमान होता और तपता है। प्राण ही मनोमय ब्रह्मका चौथा पाद है। वह वायुरूप ज्योतिसे प्रकाशित होता और तपता है। जो इस प्रकार जानता है वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होता और तपता है। चक्षु ही मन:संज्ञक ब्रह्मका चौथा पाद है। वह आदित्यरूप ज्योतिसे प्रकाशित होता और तपता है। जो इस प्रकार जानता है वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होता है। श्रोत्र ही मनोरूप ब्रह्मका चौथा पाद है। वह दिशारूप ज्योतिसे प्रकाशित होता और तपता है। जो इस प्रकार जानता है वह कीर्ति, यश और ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होता और तपता है॥ १—६॥

एकोनविंश खण्ड

आदित्यकी ब्रह्मरूपमें उपासना

आदित्य ब्रह्म है—ऐसा उपदेश है; उसीकी व्याख्या की जाती है। पहले यह असत् ही था। वह सत् (कार्याभिमुख) हुआ। वह अङ्कुरित हुआ। वह एक अण्डेमें परिणत हो गया। वह एक वर्षपर्यन्त उसी प्रकार पड़ा रहा। फिर वह फूटा; वे दोनों अण्डेके खण्ड रजत और सुवर्णरूप हो गये। उनमें जो खण्ड रजत हुआ, वह यह पृथिवी है और जो सुवर्ण हुआ, वह द्युलोक है। उस अण्डेका जो जरायु (स्थूल गर्भवेष्टन) था [वही] वे पर्वत हैं, जो उल्ब (सूक्ष्म गर्भवेष्टन) था, मेघोंके सहित कुहरा है, जो धमनियाँ थीं, वे नदियाँ हैं तथा जो वस्तिगत जल था, वह समुद्र है। फिर उससे जो उत्पन्न हुआ, वह यह आदित्य है। उसके उत्पन्न होते ही बड़े जोरोंका शब्द हुआ तथा उसीसे सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग हुए हैं। इसीसे उसका उदय और अस्त होनेपर दीर्घ-शब्दयुक्त घोष उत्पन्न होते हैं तथा सम्पूर्ण प्राणी और सारे भोग भी उत्पन्न होते हैं। वह जो इस प्रकार जाननेवाला होकर आदित्यकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है, [वह आदित्यरूप हो जाता है, तथा] उसके समीप शीघ्र ही सुन्दर घोष आते हैं और उसे सुख देते हैं, सुख देते हैं॥ १—४॥

॥ तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

नारायणपरो ज्योतिरात्मा नारायणः परः।
नारायणपरं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः।
नारायणपरो ध्याता ध्यानं नारायणः परः॥ (नारायणोप०)

नारायण परमज्योति हैं, नारायण परमात्मा हैं, नारायण परमब्रह्म हैं, नारायण परमतत्त्व हैं, नारायण परम ध्याता हैं और नारायण ही परम ध्यान हैं।

ॐ

चतुर्थ अध्याय

प्रथम खण्ड

राजा जानश्रुति और रैक्वका उपाख्यान

जो श्रद्धापूर्वक देनेवाला एवं बहुत दान करनेवाला था और जिसके यहाँ [दान करनेके लिये] बहुत-सा अन्न पकाया जाता था ऐसा कोई जनश्रुतके कुलमें उत्पन्न हुआ उसके पुत्रका पौत्र था। उसने, इस आशयसे कि लोग सब जगह मेरा ही अन्न खायँगे, सर्वत्र निवासस्थान (धर्मशालाएँ) बनवा दिये थे॥ १॥

उसी समय [एक दिन] रात्रिमें उधरसे हंस उड़कर गये। उनमेंसे एक हंसने दूसरे हंससे कहा—'अरे ओ भल्लाक्ष! ओ भल्लाक्ष!! देख, जानश्रुति पौत्रायणका तेज द्युलोकके समान फैला हुआ है; तू उसका स्पर्श न कर, वह तुझे भस्म न कर डाले।' उससे दूसरे [अग्रगामी] हंसने कहा—'अरे! तू किस महत्त्वसे युक्त रहनेवाले इस राजाके प्रति इस तरह सम्मानित वचन कह रहा है? क्या तू इसे गाड़ीवाले रैक्वके समान बतलाता है?' [इसपर उसने पूछा—] 'यह जो गाड़ीवाला रैक्व है, कैसा है?' 'जिस प्रकार [द्यूतक्रीडामें] कृतनामक पासेके द्वारा जीतनेवाले पुरुषके अधीन उससे निम्न श्रेणीके सारे पासे हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रजा जो कुछ सत्कर्म करती है वह सब उस (रैक्व)-को प्राप्त हो जाता है। जो बात वह रैक्व जानता है, उसे जो कोई भी जानता है, उसके विषयमें भी मुझसे यह कह दिया गया'॥ २—४॥

इस बातको जानश्रुति पौत्रायणने सुन लिया। [दूसरे दिन प्रातःकाल] उठते ही उसने सेवकसे कहा—'अरे भैया! तू गाड़ीवाले रैक्वके समान मेरी स्तुति क्या करता है?' [इसपर सेवकने पूछा—] 'यह जो गाड़ीवाला रैक्व है, कैसा है?' [राजाने कहा—] 'जिस प्रकार कृतनामक पासेके द्वारा जीतनेवाले पुरुषके अधीन उसके निम्नवर्ती समस्त पासे हो जाते हैं, उसी प्रकार उस रैक्वको, जो कुछ भी प्रजा सत्कर्म करती है, वह सब प्राप्त हो जाता है तथा जो कुछ (वह रैक्व) जानता है, उसे जो कोई जानता है, वह भी इस कथनद्वारा मैंने बतला दिया'॥ ५-६॥

वह सेवक उसकी खोज करनेके अनन्तर 'मैं उसे नहीं पा सका' ऐसा कहता हुआ लौट आया! तब उससे राजाने कहा—'अरे! जहाँ ब्राह्मणकी खोज की जाती है वहाँ उसके पास जा।' उसने एक छकड़ेके नीचे खाज खुजलाते हुए [रैक्वको देखा]। वह रैक्वके पास बैठ गया और बोला—'भगवन्! क्या आप ही गाड़ीवाले रैक्व हैं?' रैक्वने 'अरे! हाँ, मैं ही हूँ' ऐसा कहकर स्वीकार किया। तब वह सेवक यह समझकर कि 'मैंने उसे पहचान लिया है' लौट आया॥ ७-८॥

द्वितीय खण्ड

जानश्रुतिका रैक्वके पास उपदेशके लिये जाना

तब वह जानश्रुति पौत्रायण छः सौ गौएँ, एक हार और एक खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ लेकर उसके पास आया और बोला—'रैक्व! ये छः सौ गौएँ, यह हार और यह खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ मैं आपके लिये लाया हूँ। आप इस धनको स्वीकार कीजिये और भगवन्! आप मुझे उस देवताका उपदेश दीजिये, जिसकी आप उपासना करते हैं।' उस रैक्वने कहा—'अरे शूद्र! गौओंके सहित यह हारयुक्त रथ तेरे ही पास रहे।' तब वह जानश्रुति पौत्रायण एक सहस्र गौएँ, एक हार, खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ और अपनी कन्या—इतना धन लेकर फिर उसके पास आया और उससे बोला—'रैक्व! ये एक सहस्र गौएँ, यह हार, यह खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ, यह पत्नी और यह ग्राम, जिसमें कि आप रहते हैं, स्वीकार कीजिये और भगवन्! मुझे अवश्य उपदेश कीजिये।'

तब उस (राजकन्या) के मुखको ही [विद्याग्रहणका द्वार] समझते हुए रैक्वने कहा—'अरे शूद्र! तू ये (गौएँ आदि) लाया है [सो ठीक है;] तू इस विद्याग्रहणके द्वारसे ही मुझसे भाषण कराता है।' इस प्रकार जहाँ वह रैक्व रहता था, वहाँ रैक्कपर्णनामक ग्राम महावृष देशमें प्रसिद्ध है। तब उसने उससे कहा॥ १—५॥

तृतीय खण्ड

वायु और प्राणकी उपासना

वायु ही संवर्ग है। जब अग्नि बुझता है तो वायुमें ही लीन होता है, जब सूर्य अस्त होता है तो वायुमें ही लीन होता है और जब चन्द्रमा अस्त होता है तो वायुमें ही लीन हो जाता है। जिस समय जल सूखता है वह वायुमें ही लीन हो जाता है। वायु ही इन सब जलोंको अपनेमें लीन कर लेता है। यह अधिदैवत दृष्टि है॥ १-२॥

अब अध्यात्मदर्शन कहा जाता है—प्राण ही संवर्ग है। जिस समय यह पुरुष सोता है, प्राणको ही वाक्-इन्द्रिय प्राप्त हो जाती है; प्राणको ही चक्षु, प्राणको ही श्रोत्र और प्राणको ही मन प्राप्त हो जाता है। प्राण ही इन सबको अपनेमें लीन कर लेता है। वे ये दो ही संवर्ग हैं—देवताओंमें वायु और इन्द्रियोंमें प्राण॥ ३-४॥

एक बार कपिगोत्रज शौनक और कक्षसेनके पुत्र अभिप्रतारीसे, जब कि उन्हें भोजन परोसा जा रहा था, एक ब्रह्मचारीने भिक्षा माँगी; किंतु उन्होंने उसे भिक्षा नहीं दी। तब उसने कहा—'भुवनोंके रक्षक उस एक देव प्रजापतिने चार महात्माओंको ग्रस लिया है। कापेय! अभिप्रतारिन्! मनुष्य अनेक प्रकारसे निवास करते हुए उस एक देवको नहीं देखते तथा जिसके [ब्रह्मचारीके रूपमें आये हुए भगवान्‌के] लिये यह अन्न है उसे ही नहीं दिया गया।' उस वाक्यका कपिगोत्रोत्पन्न शौनकने मनन किया और फिर उस [ब्रह्मचारी] के पास आकर कहा—'जो देवताओंका आत्मा, प्रजाओंका उत्पत्तिकर्ता, हिरण्यदंष्ट्र, भक्षणशील और मेधावी है, जिसकी बड़ी महिमा कही गयी है, जो स्वयं दूसरोंसे न खाया जानेवाला और जो वस्तुतः अन्न नहीं हैं उनको भी भक्षण कर जाता है, ब्रह्मचारिन्! उसीकी हम उपासना करते हैं।' [ऐसा कहकर उसने सेवकोंको आज्ञा दी कि] 'इस ब्रह्मचारीको भिक्षा दो'॥ ५—७॥

तब उन्होंने उसे भिक्षा दे दी। वे ये [अग्न्यादि और वायु] पाँच [वागादिसे] अन्य हैं तथा इनसे [वागादि और प्राण] ये पाँच अन्य हैं। इस प्रकार ये सब दस होते हैं। ये दस कृत (कृतनामक पासेसे उपलक्षित द्यूत) हैं। अतः सम्पूर्ण दिशाओंमें ये अन्न ही दस कृत हैं। यह विराट् ही अन्नादी (अन्न भक्षण करनेवाला) है। उसके द्वारा यह सब देखा जाता है। जो ऐसा जानता है उसके द्वारा यह सब देख लिया जाता है और वह अन्न भक्षण करनेवाला होता है॥ ८॥

चतुर्थ खण्ड

जबालापुत्र सत्यकामद्वारा गुरुकी आज्ञाका पालन

जबालाके पुत्र सत्यकामने अपनी माता जबालाको सम्बोधित करके निवेदन किया—'पूज्ये! मैं ब्रह्मचर्यपूर्वक [गुरुकुलमें] निवास करना चाहता हूँ; बता मैं किस गोत्रवाला हूँ?' उसने उससे कहा—'हे बेटा! तू जिस गोत्रवाला है उसे मैं नहीं जानती। युवावस्थामें, जब कि मैं बहुत कार्य करनेवाली परिचारिणी थी, मैंने तुझे प्राप्त किया था। मैं यह नहीं जानती कि तू किस गोत्रवाला है? मैं तो जबाला नामवाली हूँ और तू सत्यकाम नामवाला है। अतः तू अपनेको 'सत्यकाम जाबाल' बतला देना।' उसने हारिद्रुमत गौतमके पास जाकर कहा—'मैं पूज्य श्रीमान्‌के यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक वास करूँगा; इसीसे आपकी सन्निधिमें आया हूँ।' उससे [गौतमने] कहा—'सोम्य! तू किस गोत्रवाला है?' उसने कहा—''भगवन्! मैं जिस गोत्रवाला हूँ उसे नहीं

जानता। मैंने मातासे पूछा था। उसने मुझे यह उत्तर दिया कि 'युवावस्थामें' जब कि मैं बहुत काम-धन्धा करनेवाली परिचारिणी थी, मैंने तुझे प्राप्त किया था। मैं यह नहीं जानती कि तू किस गोत्रवाला है? मैं जबाला नामवाली हूँ और तू सत्यकाम नामवाला है।' अतः गुरो! मैं सत्यकाम जाबाल हूँ।'' उससे गौतमने कहा—'ऐसा स्पष्ट भाषण कोई ब्राह्मणेतर नहीं कर सकता। अतः सोम्य! तू समिधा ले आ, मैं तेरा उपनयन कर दूँगा, क्योंकि तूने सत्यका त्याग नहीं किया।' तब उसका उपनयन कर चार सौ कृश और दुर्बल गौएँ अलग निकालकर उससे कहा—'सोम्य! तू इन गौओंके पीछे जा।' उन्हें ले जाते समय उसने कहा—'इनकी एक सहस्र गायें हुए बिना मैं नहीं लौटूँगा।' जबतक कि वे एक सहस्र हुईं वह बहुत वर्षोंतक वनमें ही रहा॥ १—५॥

पञ्चम खण्ड

सत्यकामको वृषभद्वारा ब्रह्मके एक पादका उपदेश

तब उससे साँडने 'सत्यकाम!' ऐसा कहा। उसने 'भगवन्!' ऐसा उत्तर दिया। [वह बोला—] 'हे सोम्य! हम एक सहस्र हो गये हैं, अब तू हमें आचार्यकुलमें पहुँचा दे।' [साँडने कहा] '[क्या] मैं तुझे ब्रह्मका एक पाद बतलाऊँ?' तब [सत्यकामने] कहा—'भगवन्! मुझे [अवश्य] बतलावें।' साँड उससे बोला—'पूर्व दिक्कला, पश्चिम दिक्कला, दक्षिण दिक्कला और उत्तर दिक्कला, हे सोम्य! यह ब्रह्मका 'प्रकाशवान्' नामक चार कलाओं-वाला पाद है।' वह, जो इसे इस प्रकार जाननेवाला पुरुष ब्रह्मके इस चतुष्कल पादकी 'प्रकाशवान्' इस गुणसे युक्त उपासना करता है, इस लोकमें प्रकाशवान् होता है और प्रकाशवान् लोकोंको जीत लेता है॥ १—३॥

षष्ठ खण्ड

अग्निद्वारा द्वितीय पादका उपदेश

'अग्नि तुझे [दूसरा] पाद बतलावेगा'—ऐसा कहकर वृषभ मौन हो गया। दूसरे दिन उसने गौओंको गुरुकुलकी ओर हाँक दिया। वे सायंकालमें जहाँ एकत्रित हुईं वहीं अग्नि प्रज्वलित कर गौओंको रोक समिधाधान कर अग्निके पश्चिम पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। उससे अग्निने 'सत्यकाम!' ऐसा कहा। तब उसने 'भगवन्!' ऐसा प्रत्युत्तर दिया। 'सोम्य! मैं तुझे ब्रह्मका एक पाद बतलाऊँ?' [अग्निने कहा, तब] [सत्यकामने कहा—] 'भगवन्! मुझे [अवश्य] बतलावें।' तब उसने उससे कहा—'पृथ्वी कला है, अन्तरिक्ष कला है, द्युलोक कला है और समुद्र कला है। सोम्य! यह ब्रह्मका चतुष्कल पाद 'अनन्तवान्' नामवाला है।' वह, जो इसे इस प्रकार जाननेवाला पुरुष ब्रह्मके इस चतुष्कल पादकी 'अनन्तवान्' इस गुणसे युक्त उपासना करता है, इस लोकमें अनन्तवान् होता है और अनन्तवान् लोकोंको जीत लेता है॥ १—४॥

सप्तम खण्ड

हंसद्वारा तृतीय पादका उपदेश

'हंस तुझे [तीसरा] पाद बतलावेगा' ऐसा [कहकर अग्नि निवृत्त हो गया]। दूसरे दिन उसने गौओंको आचार्यकुलकी ओर हाँक दिया। वे सायङ्कालमें जहाँ एकत्रित हुईं वह उसी जगह अग्नि प्रज्वलित कर, गौओंको रोक और समिधाधान कर अग्निके पश्चिम पूर्वाभिमुख होकर बैठा। तब हंसने उसके समीप उतरकर कहा—'सत्यकाम!' उसने उत्तर दिया—'भगवन्!' [हंसने कहा—] 'सोम्य! मैं तुझे ब्रह्मका पाद बतलाऊँ?'

[सत्यकाम बोला—] 'भगवन्! मुझे बतलावें।' तब वह उससे बोला—'अग्नि कला है, सूर्य कला है, चन्द्रमा कला है और विद्युत् कला है। सोम्य! यह ब्रह्मका चतुष्कल पाद 'ज्योतिष्मान्' नामवाला है।' जो कोई इसे इस प्रकार जाननेवाला पुरुष ब्रह्मके इस चतुष्कल पादको 'ज्योतिष्मान्' ऐसे गुणसे युक्त उपासना करता है, वह इस लोकमें ज्योतिष्मान् होता है तथा ज्योतिष्मान् लोकोंको जीत लेता है॥ १—४॥

अष्टम खण्ड

मद्गुद्वारा चतुर्थ पादका उपदेश

'मदु तुझे [चौथा] पाद बतलावेगा' ऐसा [कहकर हंस चला गया]। दूसरे दिन उसने गौओंको गुरुकुलकी ओर हाँक दिया। वे सायंकालमें जहाँ एकत्रित हुईं वहीं अग्नि प्रज्वलित कर गायोंको रोक समिधाधान कर अग्निके पीछे पूर्वाभिमुख होकर बैठ गया। मद्गुने उसके पास उतरकर कहा—'सत्यकाम!' तब उसने उत्तर दिया—'भगवन्!' [मद्गु बोला—] 'सोम्य! मैं तुझे ब्रह्मका पाद बतलाऊँ?' [सत्यकाम बोला—] 'भगवन्! मुझे अवश्य बतलावें।' वह उससे बोला—'प्राण कला है, चक्षु कला है, श्रोत्र कला है और मन कला है। सोम्य! यह ब्रह्मका चतुष्कल पाद 'आयतनवान्' नामवाला है।' वह, जो इसे इस प्रकार जाननेवाला पुरुष ब्रह्मके इस चतुष्कल पादकी 'आयतनवान्' ऐसे गुणसे युक्त उपासना करता है, इस लोकमें आयतनवान् होता है और आयतनवान् लोकोंको जीत लेता है॥ १—४॥

नवम खण्ड

सत्यकामका आचार्यसे पुनः उपदेश-ग्रहण

सत्यकाम आचार्यकुलमें पहुँचा। उससे आचार्यने कहा—'सत्यकाम!' तब उसने उत्तर दिया—'भगवन्!' 'सोम्य! तू ब्रह्मवेत्ता-सा दिखलायी दे रहा है; तुझे किसने उपदेश दिया है?' ऐसा [आचार्यने पूछा]। तब उसने उत्तर दिया, 'मनुष्योंसे भिन्न [देवताओं] ने मुझे उपदेश दिया है, अब मेरी इच्छाके अनुसार आप पूज्यपाद ही मुझे विद्याका उपदेश करें। मैंने श्रीमान्-जैसे ऋषियोंसे सुना है कि आचार्यसे जानी गयी विद्या ही अतिशय साधुताको प्राप्त होती है।' तब आचार्यने उसे उसी विद्याका उपदेश किया। उसमें कुछ भी न्यून नहीं हुआ, न्यून नहीं हुआ [अर्थात् उसकी विद्या पूर्ण ही रही]॥ १—३॥

दशम खण्ड

उपकोसलको अग्नियोंद्वारा ब्रह्मविद्याका उपदेश

उपकोसल नामसे प्रसिद्ध कमलका पुत्र सत्यकाम जाबालके यहाँ ब्रह्मचर्य ग्रहण करके रहता था। उसने बारह वर्षतक उस आचार्यके अग्नियोंकी सेवा की; किंतु आचार्यने अन्य ब्रह्मचारियोंका तो समावर्तन-संस्कार कर दिया, किंतु केवल इसीका नहीं किया। आचार्यसे उसकी भार्याने कहा—'यह ब्रह्मचारी खूब तपस्या कर चुका है, इसने अच्छी तरह अग्नियोंकी सेवा की है। देखिये, अग्नियाँ आपकी निन्दा न करें। अतः इसे विद्याका उपदेश कर दीजिये।' किंतु वह उसे उपदेश किये बिना ही बाहर चला गया। उस उपकोसलने मानसिक खेदसे अनशन करनेका निश्चय किया। उससे आचार्यपत्नीने कहा—'अरे ब्रह्मचारिन्! तू भोजन कर, क्यों नहीं भोजन करता?' वह बोला—'माताजी! इस मनुष्यमें अनेक ओर जानेवाली बहुत-सी कामनाएँ रहती हैं। मैं व्याधियोंसे परिपूर्ण हूँ, इसलिये भोजन नहीं करूँगा'॥ १—३॥

फिर अग्नियोंने एकत्रित होकर कहा—'यह ब्रह्मचारी तपस्या कर चुका है; इसने हमारी अच्छी तरह सेवा की है। अच्छा, हम इसे उपदेश करें' ऐसा निश्चयकर वे उससे बोले—'प्राण' ब्रह्म है, 'क' ब्रह्म है, 'ख' ब्रह्म है। वह बोला—'यह तो मैं जानता हूँ कि प्राण ब्रह्म है; किंतु 'क' और 'ख' को नहीं जानता।' तब वे बोले—'निश्चय जो 'क' है वही 'ख' है और जो 'ख' है वही 'क' है।' इस प्रकार उन्होंने उसे प्राण और उसके [आश्रयभूत] आकाशका उपदेश किया॥ ४-५॥

एकादश खण्ड

अकेले गार्हपत्याग्निद्वारा शिक्षा

फिर उसे गार्हपत्याग्निने शिक्षा दी—'पृथ्वी, अग्नि, अन्न और आदित्य—ये मेरे चार शरीर हैं। आदित्यके अन्तर्गत जो यह पुरुष दिखायी देता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ।' वह पुरुष, जो इसे इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है, पापकर्मोंको नष्ट कर देता है, अग्निलोकवान् होता है, पूर्ण आयुको प्राप्त होता है, उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है तथा इसके उत्तरवर्ती पुरुष क्षीण नहीं होते और जो इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है उसका हम इस लोक और परलोकमें भी पालन करते हैं॥ १-२॥

द्वादश खण्ड

अन्वाहार्यपचन नामक दूसरे अग्निद्वारा शिक्षा

फिर उसे अन्वाहार्यपचनने शिक्षा दी—'जल, दिशा, नक्षत्र और चन्द्रमा—ये मेरे चार शरीर हैं। चन्द्रमामें जो यह पुरुष दिखायी देता है वह मैं हूँ, वही मैं हूँ।' वह पुरुष, जो इसे इस प्रकार जानकर इस (चार भागोंमें विभक्त अग्नि)-की उपासना करता है, पापकर्मोंका नाश कर देता है, लोकवान् होता है, पूर्ण आयुको प्राप्त होता है और उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है। उसके पीछे होनेवाले पुरुष क्षीण नहीं होते तथा जो इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है हम उसका इस लोक और परलोकमें भी पालन करते हैं॥ १-२॥

त्रयोदश खण्ड

आहवनीय-अग्निद्वारा शिक्षा

तदनन्तर उसे आहवनीयाग्निने उपदेश किया—'प्राण, आकाश, द्युलोक और विद्युत्—ये मेरे चार शरीर हैं। यह जो विद्युत्में पुरुष दिखायी देता है, वह मैं हूँ, वही मैं हूँ।' वह पुरुष, जो इसे इस प्रकार जानकर इस (चार भागोंमें विभक्त अग्नि)-की उपासना करता है, पापकर्मको नष्ट कर देता है, लोकवान् होता है, पूर्ण आयुको प्राप्त होता है तथा उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है। जो इसे इस प्रकार जानकर इसकी उपासना करता है, उसके पश्चाद्वर्ती पुरुष क्षीण नहीं होते तथा उसका हम इस लोक और परलोकमें भी पालन करते हैं॥ १-२॥

चतुर्दश खण्ड

आचार्य और उपकोसलका संवाद

उन्होंने कहा—'उपकोसल! सोम्य! यह अपनी विद्या और आत्मविद्या तेरे प्रति कही। आचार्य तुझे इनके फलकी प्राप्तिका मार्ग बतलायेंगे।' तदनन्तर उसके आचार्य आये। उससे आचार्यने कहा—

'उपकोसल!' उसने 'भगवन्!' ऐसा उत्तर दिया। [आचार्य बोले—] 'सोम्य! तेरा मुख ब्रह्मवेत्ताके समान जान पड़ता है; तुझे किसने उपदेश किया है?' 'गुरुजी! मुझे कौन उपदेश करता' ऐसा कहकर वह मानो उसे छिपाने लगा। [फिर अग्नियोंकी ओर संकेत करके बोला—] 'निश्चय इन्हींने उपदेश किया है जो अन्य प्रकारके थे और अब ऐसे हैं'—ऐसा कहकर उसने अग्नियोंको बतलाया। [तब आचार्यने पूछा—] 'सोम्य! इन्होंने तुझे क्या बतलाया है?' तब उसने 'यह बतलाया है' ऐसा कहकर उत्तर दिया। [इसपर आचार्यने कहा—] 'हे सोम्य! इन्होंने तो तुझे केवल लोकोंका ही उपदेश किया है; अब मैं तुझे वह बतलाता हूँ जिसे जाननेवालेसे पाप-कर्मका उसी प्रकार सम्बन्ध नहीं होता जैसे कमलपत्रसे जलका सम्बन्ध नहीं होता।' वह बोला—'भगवन्! मुझे बतलावें।' तब आचार्य उससे बोले॥ १—३॥

~~~O~~~

पञ्चदश खण्ड

आचार्यद्वारा उपदेश; ब्रह्मवेत्ताकी गतिका वर्णन

'यह जो नेत्रमें पुरुष दिखायी देता है, यह आत्मा है'—ऐसा उसने कहा 'यह अमृत है, अभय है और ब्रह्म है। उस (पुरुषके स्थानरूप नेत्र)-में यदि घृत या जल डाले तो वह पलकोंमें ही चला जाता है। इसे 'संयद्वाम' ऐसा कहते हैं, क्योंकि सम्पूर्ण सेवनीय वस्तुएँ सब ओरसे इसीको प्राप्त होती हैं; जो इस प्रकार जानता है, उसे सम्पूर्ण सेवनीय वस्तुएँ सब ओरसे प्राप्त होती हैं। यही वामनी है, क्योंकि यही सम्पूर्ण वामोंका वहन करता है। जो ऐसा जानता है, वह सम्पूर्ण वामोंको वहन करता है। यही भामनी है, क्योंकि यही सम्पूर्ण लोकोंमें भासमान होता है। जो ऐसा जानता है, वह सम्पूर्ण लोकोंमें भासमानी होता है॥ १—४॥

अब [श्रुति पूर्वोक्त ब्रह्मवेत्ताकी गति बतलाती है—] इसके लिये शवकर्म करें अथवा न करें—वह अर्चि-अभिमानी देवताको ही प्राप्त होता है। फिर अर्चि-अभिमानी देवतासे दिवसाभिमानी देवताको, दिवसाभिमानीसे शुक्लपक्षाभिमानी देवताको और शुक्लपक्षाभिमानी देवतासे उत्तरायणके छः मासोंको प्राप्त होता है। मासोंसे संवत्सरको, संवत्सरसे आदित्यको, आदित्यसे चन्द्रमाको और चन्द्रमासे विद्युत्को प्राप्त होता है। वहाँसे अमानव पुरुष इसे ब्रह्मको प्राप्त करा देता है। यह देवमार्ग—ब्रह्ममार्ग है। इससे जानेवाले पुरुष इस मानवमण्डलमें नहीं लौटते, नहीं लौटते॥ ५॥

~~~O~~~

षोडश खण्ड

पवनकी यज्ञरूपमें उपासना

यह जो चलता है निश्चय यज्ञ ही है। यह चलता हुआ निश्चय ही इस सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करता है; क्योंकि यह गमन करता हुआ इस समस्त संसारको पवित्र कर देता है इसलिये यही यज्ञ है। मन और वाक्—ये दोनों इसके मार्ग हैं। इनमेंसे एक मार्गका ब्रह्मा मनके द्वारा संस्कार करता है तथा होता, अध्वर्यु और उद्गाता ये वाणीद्वारा दूसरे मार्गका संस्कार करते हैं। यदि प्रातरनुवाकके आरम्भ हो जानेपर परिधानीया ऋचाके उच्चारणसे पूर्व ब्रह्मा बोल उठता है तो वह केवल एक मार्गका ही संस्कार करता है, दूसरा मार्ग नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार एक पैरसे चलनेवाला पुरुष अथवा एक पहियेसे चलनेवाला रथ नष्ट हो जाता है उसी प्रकार इसका यज्ञ भी नाशको प्राप्त हो जाता है। यज्ञके नष्ट होनेके पश्चात् यजमानका नाश होता है; इस प्रकारका यज्ञ करनेपर वह और भी अधिक पापी हो जाता है और यदि प्रातरनुवाकका आरम्भ

होनेके अनन्तर परिधानीया ऋचासे पूर्व ब्रह्मा नहीं बोलता है तो समस्त ऋत्विक् मिलकर दोनों ही मार्गोंका संस्कार कर देते हैं। तब कोई भी मार्ग नष्ट नहीं होता। जिस प्रकार दोनों पैरोंसे चलनेवाला पुरुष अथवा दोनों पहियोंसे चलनेवाला रथ स्थित रहता है इसी प्रकार इसका यज्ञ स्थित रहता है, यज्ञके स्थित रहनेपर यजमान भी स्थित रहता है। वह ऐसा यज्ञ करके श्रेष्ठ होता है॥ १—५॥

सप्तदश खण्ड

यज्ञमें योग्य ब्रह्माकी आवश्यकता

प्रजापतिने लोकोंको लक्ष्य बनाकर ध्यानरूप तप किया। उन तप किये जाते हुए लोकोंसे उसने रस निकाले। पृथ्वीसे अग्नि, अन्तरिक्षसे वायु और द्युलोकसे आदित्यको निकाला। फिर उसने इन तीन देवताओंको लक्ष्य करके तप किया। उन तप किये जाते हुए देवताओंसे उसने रस निकाले। अग्निसे ऋक्, वायुसे यजुः और आदित्यसे साम ग्रहण किये। तदनन्तर उसने इस त्रयीविद्याको लक्ष्य करके तप किया। उस तप की जाती हुई विद्यासे उसने रस निकाले। ऋक्श्रुतियोंसे भूः, यजुःश्रुतियोंसे भुवः तथा सामश्रुतियोंसे स्वः इन रसोंको ग्रहण किया। उस यज्ञमें यदि ऋक्श्रुतियोंके सम्बन्धसे क्षत हो तो '**भूः स्वाहा**' ऐसा कहकर गार्हपत्याग्निमें हवन करे। इस प्रकार वह ऋचाओंके रससे ऋचाओंके वीर्यद्वारा ऋक्सम्बन्धी यज्ञके क्षतकी पूर्ति करता है और यदि यजुःश्रुतियोंके कारण क्षत हो तो '**भुवः स्वाहा**' ऐसा कहकर दक्षिणाग्निमें हवन करे। इस प्रकार वह यजुओंके रससे यजुओंके वीर्यद्वारा यज्ञके यजुःसम्बन्धी क्षतकी पूर्ति करता है और यदि सामश्रुतियोंके कारण क्षत हो तो '**स्वः स्वाहा**' ऐसा कहकर आहवनीयाग्निमें हवन करे। इस प्रकार वह सामके रससे सामके वीर्यद्वारा यज्ञके सामसम्बन्धी क्षतिकी पूर्ति करता है। इस विषयमें ऐसा समझना चाहिये कि जिस प्रकार लवण (क्षार)-से सुवर्णको, सुवर्णसे चाँदीको, चाँदीसे त्रपुको, त्रपुसे सीसेको, सीसेसे लोहेको और लोहेसे काष्ठको अथवा चमड़ेसे काष्ठको जोड़ा जाता है, उसी प्रकार इन लोक, देवता और त्रयीविद्याके वीर्यसे यज्ञके क्षतका प्रतिसन्धान किया जाता है। जिसमें इस प्रकार जाननेवाला ब्रह्मा होता है वह यज्ञ निश्चय ही मानो ओषधियोंद्वारा संस्कृत होता है। जहाँ इस प्रकार जाननेवाला ब्रह्मा होता है वह यज्ञ उदक्प्रवण होता है। इस प्रकार जाननेवाले ब्रह्माके उद्देश्यसे ही यह गाथा प्रसिद्ध है कि 'जहाँ-जहाँ कर्म आवृत्त होता है वहीं वह पहुँच जाता है'॥ १—९॥

एक मानव ब्रह्मा ही ऋत्विक् है। जिस प्रकार युद्धमें घोड़ी योद्धाओंकी रक्षा करती है, उसी प्रकार ऐसा जाननेवाला ब्रह्मा यज्ञ, यजमान और अन्य समस्त ऋत्विजोंकी भी सब ओरसे रक्षा करता है। अतः इस प्रकार जाननेवालेको ही ब्रह्मा बनावे, ऐसा न जाननेवालेको नहीं, ऐसा न जाननेवालेको नहीं॥ १०॥

॥ चतुर्थ अध्याय समाप्त॥ ४॥

संसारमें ऐसे दो प्रकारके पुरुष बिरले ही होते हैं

१—जिसने जो माँगा, उसको वही दे देनेवाले।

२—स्वयं कभी किसीसे कुछ भी न माँगनेवाले।

ॐ

पञ्चम अध्याय

प्रथम खण्ड

प्राणकी सर्वश्रेष्ठता

जो ज्येष्ठ और श्रेष्ठको जानता है, वह ज्येष्ठ और श्रेष्ठ हो जाता है। निश्चय ही प्राण ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। जो कोई वसिष्ठको जानता है, वह स्वजातीयोंमें वसिष्ठ होता है; निश्चय वाक् ही वसिष्ठ है। जो कोई प्रतिष्ठाको जानता है, वह इस लोक और परलोकमें प्रतिष्ठित होता है; चक्षु ही प्रतिष्ठा है। जो कोई सम्पद्को जानता है, उसे दैव और मानुष भोग सम्यक् प्रकारसे प्राप्त होते हैं। श्रोत्र ही सम्पद् है। जो आयतनको जानता है, वह स्वजातियोंका आयतन—आश्रय होता है। निश्चय मन ही आयतन है॥ १—५॥

एक बार प्राण (इन्द्रियाँ) 'मैं श्रेष्ठ हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ' इस प्रकार अपनी श्रेष्ठताके लिये विवाद करने लगे। उन प्राणोंने अपने पिता प्रजापतिके पास जाकर कहा—'भगवन्! हममें कौन श्रेष्ठ है?' प्रजापतिने उनसे कहा—'तुममेंसे जिसके उत्क्रमण करनेपर शरीर अत्यन्त पापिष्ठ-सा दिखायी देने लगे, वही तुममें श्रेष्ठ है।' तब वाक्-इन्द्रियने उत्क्रमण किया। उसने एक वर्ष प्रवास करनेके अनन्तर फिर लौटकर पूछा—'मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके?' [उन्होंने कहा—] 'जिस प्रकार गूँगेलोग बिना बोले प्राणसे प्राणनक्रिया करते, नेत्रसे देखते, कानसे सुनते और मनसे चिन्तन करते हुए जीवित रहते हैं, उसी प्रकार हम भी जीवित रहे।' ऐसा सुनकर वाक् इन्द्रियने शरीरमें प्रवेश किया। फिर चक्षुने उत्क्रमण किया। उसने एक वर्ष प्रवास करनेके अनन्तर फिर लौटकर पूछा—'मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके?' [उन्होंने कहा—] 'जिस प्रकार अन्धेलोग बिना देखे प्राणसे प्राणन करते, वाणीसे बोलते, कानसे सुनते और मनसे चिन्तन करते हुए जीवित रहते हैं, उसी प्रकार हम भी जीवित रहे।' ऐसा सुनकर चक्षुने प्रवेश किया। तदनन्तर श्रोत्रने उत्क्रमण किया। उसने एक वर्ष प्रवास करनेके अनन्तर फिर लौटकर पूछा—'मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके?' [उन्होंने कहा—] 'जिस प्रकार बहरे मनुष्य बिना सुने प्राणसे प्राणन करते, वाणीसे बोलते, नेत्रसे देखते और मनसे चिन्तन करते हुए जीवित रहते हैं, उसी प्रकार हम भी जीवित रहे।' यह सुनकर श्रोत्रने शरीरमें प्रवेश किया। तत्पश्चात् मनने उत्क्रमण किया। उसने एक वर्ष प्रवास कर फिर लौटकर कहा—'मेरे बिना तुम कैसे जीवित रह सके?' [उन्होंने कहा—] 'जिस प्रकार बच्चे, जिनका कि मन विकसित नहीं होता, प्राणसे प्राणनक्रिया करते, वाणीसे बोलते, नेत्रसे देखते और कानसे सुनते हुए जीवित रहते हैं, उसी प्रकार हम भी जीवित रहे।' यह सुनकर मनने भी प्रवेश किया। फिर प्राणने उत्क्रमण करनेकी इच्छा की। उसने, जिस प्रकार अच्छा घोड़ा अपने पैर बाँधनेके कीलोंको उखाड़ डालता है, उसी प्रकार अन्य प्राणोंको भी उखाड़ दिया। तब उन सबने उसके सामने जाकर कहा—'भगवन्! आप [हमारे स्वामी] रहें, आप ही हम सबमें श्रेष्ठ हैं, आप उत्क्रमण न करें'॥ ६—१२॥

फिर उससे वाक्-इन्द्रियने कहा—'मैं जो वसिष्ठ हूँ सो तुम्हीं वसिष्ठ हो।' तदनन्तर उससे चक्षुने कहा—'मैं जो प्रतिष्ठा हूँ सो तुम्हीं प्रतिष्ठा हो।' फिर उससे श्रोत्रने कहा—'मैं जो सम्पद् हूँ सो तुम्हीं सम्पद् हो।' तत्पश्चात् उससे मन बोला—'मैं जो आयतन हूँ, सो तुम्हीं आयतन हो।' (लोकमें समस्त इन्द्रियोंको) न वाक्, न चक्षु, न श्रोत्र और न मन ही कहते हैं; परंतु 'प्राण' ऐसा कहते हैं; क्योंकि ये सब प्राण ही हैं॥ १३—१५॥

द्वितीय खण्ड

महत्त्वप्राप्तिके लिये मन्थोपासना

उसने कहा—'मेरा अन्न क्या होगा?' तब वागादिने कहा—'कुत्तों और पक्षियोंसे लेकर सब जीवोंका यह जो कुछ अन्न है [सब तुम्हारा अन्न है]', सो यह सब अन (प्राण-) का अन्न है। 'अन' यह

प्राणका प्रत्यक्ष नाम है। इस प्रकार जाननेवालेके लिये भी कुछ अनन्न (अभक्ष्य) नहीं होता है। उसने कहा—'मेरा वस्त्र क्या होगा?' तब वागादि बोले—'जल'। इसीसे भोजन करनेवाले पुरुष भोजनके पूर्व और पश्चात् इसका जलसे आच्छादन करते हैं। ऐसा करनेसे वह वस्त्र प्राप्त करनेवाला और अनग्न होता है॥ १-२॥

उस इस (प्राणदर्शन) को सत्यकाम जाबालने वैयाघ्रपद्य गो-श्रुतिके प्रति निरूपित करके कहा—'यदि इसे सूखे ठूँठके प्रति कहे तो उसमें शाखा उत्पन्न हो जायगी और पत्ते फूट आयेंगे'॥ ३॥

अब यदि वह महत्त्वको प्राप्त होना चाहे तो उसे अमावास्याको दीक्षित होकर पूर्णिमाकी रात्रिको सर्वौषधके दधि और मधुसम्बन्धी मन्थका मन्थन कर '**ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय स्वाहा**' ऐसा कहते हुए अग्निमें घृतका हवन कर मन्थपर उसका अवशेष डालना चाहिये। इसी प्रकार '**वसिष्ठाय स्वाहा**' इस मन्त्रसे अग्निमें घृताहुति देकर मन्थमें घृतका स्राव डाले; '**प्रतिष्ठायै स्वाहा**' इस मन्त्रसे अग्निमें घृताहुति देकर मन्थमें घृतका स्राव डाले; '**संपदे स्वाहा**' इस मन्त्रसे अग्निमें घृताहुति देकर मन्थमें घृतका स्राव डाले तथा '**आयतनाय स्वाहा**' इस मन्त्रसे अग्निमें घृताहुति देकर मन्थमें घृतका स्राव डाले। तदनन्तर अग्निसे कुछ दूर हटकर मन्थको अञ्जलिमें ले वह '**अमो नामासि**' इत्यादि मन्त्रका जप करे। [**अमो नामासि** आदि मन्त्रका अर्थ—] 'हे मन्थ! तू '**अम**' नामवाला है, क्योंकि यह सारा जगत् [अपने प्राणभूत] तेरे साथ अवस्थित है। वह तू ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, राजा (दीप्तिमान्) और सबका अधिपति है। वह तू मुझे ज्येष्ठत्व, श्रेष्ठत्व, राज्य और आधिपत्यको प्राप्त करा। मैं ही यह सर्वरूप हो जाऊँ।' फिर वह इस ऋचासे* पादशः [उस मन्थका] भक्षण करता है। '**तत्सवितुर्वृणीमहे**' ऐसा कहकर भक्षण करता है; '**वयं देवस्य भोजनम्**' ऐसा कहकर भक्षण करता है; '**श्रेष्ठꣳसर्वधातमम्**' ऐसा कहकर भोजन करता है; तथा '**तुरं भगस्य धीमहि**' ऐसा कहकर कंस (कटोरे) या चमस (चम्मच)-को धोकर सारा मन्थलेप पी जाता है। तत्पश्चात् वह अग्निके पीछे चर्म अथवा स्थण्डिल (पवित्र यज्ञभूमि)-पर वाणीका संयम कर [अनिष्ट स्वप्नदर्शनसे] अभिभूत न होता हुआ शयन करता है। उस समय यदि वह [स्वप्नमें] स्त्रीको देखे तो ऐसा समझे कि कर्म सफल हो गया। इस विषयमें यह श्लोक है—जिस समय काम्यकर्मोंमें स्वप्नमें स्त्रीको देखे तो उस स्वप्नदर्शनके होनेपर उस कर्ममें समृद्धि जाने॥ ४—८॥

तृतीय खण्ड

श्वेतकेतु और प्रवाहणका संवाद; श्वेतकेतुके पिताका राजासे उपदेश माँगना

आरुणिका पुत्र श्वेतकेतु पञ्चालदेशीय लोगोंकी सभामें आया। उससे जीवलके पुत्र प्रवाहणने कहा—'कुमार! क्या पिताने तुझे शिक्षा दी है?' इसपर उसने कहा—'हाँ, भगवन्!'॥ १॥

'क्या तुझे मालूम है कि इस लोकसे जानेपर प्रजा कहाँ जाती है?' [श्वेतकेतु—] 'भगवन्! नहीं।' [प्रवाहण—] 'क्या तू जानता है कि वह फिर इस लोकमें कैसे आती है?' [श्वेतकेतु—] 'नहीं, भगवन्!' [प्रवाहण—] 'देवयान और पितृयान—इन दोनों मार्गोंका पारस्परिक वियोगस्थान तुझे मालूम है?' [श्वेतकेतु—] 'नहीं भगवन्' [प्रवाहण—] 'तुझे मालूम है, यह पितृलोक भरता क्यों नहीं है?' [श्वेतकेतु—] 'भगवन्! नहीं।' [प्रवाहण—] 'क्या तू जानता है कि पाँचवीं आहुतिके हवन कर दिये जानेपर आप (सोमघृतादि रस) 'पुरुष' संज्ञाको कैसे प्राप्त होते हैं?' [श्वेतकेतु—] 'नहीं, भगवन्! नहीं।' 'तो फिर तू अपनेको 'मुझे शिक्षा दी गयी है' ऐसा क्यों कहता था? जो इन बातोंको नहीं जानता वह अपनेको शिक्षित कैसे कह सकता है?' तब वह त्रस्त होकर अपने पिताके स्थानपर आया और उससे बोला—'श्रीमान्ने मुझे शिक्षा दिये बिना ही कह दिया था कि मैंने तुझे शिक्षा दे दी है। उस क्षत्रियबन्धुने मुझसे पाँच प्रश्न पूछे; किंतु मैं उनमेंसे

* इस ऋचाका अर्थ इस प्रकार है—'हम प्रकाशमान सविताके उस सर्वविषयक श्रेष्ठतम भोजनकी प्रार्थना करते हैं और शीघ्र ही सविता देवताके स्वरूपका ध्यान करते हैं।'

एकका भी विवेचन नहीं कर सका।' पिताने कहा—'तुमने उस समय (आते ही) जैसे ये प्रश्न मुझे सुनाये हैं उनमेंसे मैं एकको भी नहीं जानता। यदि मैं इन्हें जानता होता तो तुम्हें क्यों न बतलाता?'॥ २—५॥

तब वह गौतम गोत्रोत्पन्न ऋषि राजा (जैबलि)-के स्थानपर आया। राजाने अपने यहाँ आये हुए उसकी पूजा की। [दूसरे दिन] प्रातःकाल होते ही राजाके सभामें पहुँचनेपर वह गौतम उसके पास गया। राजाने उससे कहा—'भगवन् गौतम! आप मनुष्यसम्बन्धी धनका वर माँग लीजिये।' उसने कहा—'राजन्! ये मनुष्यसम्बन्धी धन आपहीके पास रहें; आपने मेरे पुत्रके प्रति जो बात प्रश्नरूपसे कही थी वही मुझे बतलाइये।' तब वह सङ्कटमें पड़ गया। उसे 'यहाँ चिरकालतक रहो' ऐसी आज्ञा दी और उससे कहा—'गौतम! जिस प्रकार तुमने मुझसे कहा है। [उससे तुम यह समझो कि] पूर्वकालमें तुमसे पहले यह विद्या ब्राह्मणोंके पास नहीं गयी। इसीसे सम्पूर्ण लोकोंमें [इस विद्याद्वारा] क्षत्रियोंका ही [शिष्योंके प्रति] अनुशासन होता रहा है।' ऐसा कहकर वह गौतमसे बोला—॥ ६-७॥

चतुर्थ खण्ड

द्युलोककी अग्निके रूपमें उपासना

हे गौतम! यह प्रसिद्ध द्युलोक ही अग्नि है। उसका आदित्य ही समिध् है; किरणें धूम हैं, दिन ज्वाला है, चन्द्रमा अङ्गार है और नक्षत्र विस्फुलिङ्ग (चिनगारियाँ) हैं। उस इस द्युलोकरूप अग्निमें देवगण श्रद्धाका हवन करते हैं। उस आहुतिसे सोम राजाकी उत्पत्ति होती है॥ १-२॥

पञ्चम खण्ड

पर्जन्यकी अग्निके रूपमें उपासना

गौतम! पर्जन्य ही अग्नि है; उसका वायु ही समिध् है, बादल धूम है, विद्युत् ज्वाला है, वज्र अङ्गार है तथा गर्जन विस्फुलिङ्ग हैं। उस अग्निमें देवगण राजा सोमका हवन करते हैं; उस आहुतिसे वर्षा होती है॥ १-२॥

षष्ठ खण्ड

पृथिवीकी अग्निके रूपमें उपासना

गौतम! पृथिवी ही अग्नि है। उसका संवत्सर ही समिध् है, आकाश धूम है, रात्रि ज्वाला है, दिशाएँ अङ्गारे हैं तथा अवान्तर दिशाएँ विस्फुलिङ्ग हैं। उस इस अग्निमें देवगण वर्षाका हवन करते हैं; उस आहुतिसे अन्न होता है॥ १-२॥

सप्तम खण्ड

पुरुषकी अग्निके रूपमें उपासना

गौतम! पुरुष ही अग्नि है। उसकी वाक् ही समिध् है, प्राण धूम है, जिह्वा ज्वाला है, चक्षु अङ्गारे हैं और श्रोत्र विस्फुलिङ्ग हैं। उस इस अग्निमें देवगण अन्नका होम करते हैं। उस आहुतिसे वीर्य उत्पन्न होता है॥ १-२॥

अष्टम खण्ड

स्त्रीकी अग्निके रूपमें उपासना

गौतम! स्त्री ही अग्नि है। उसका उपस्थ ही समिध् है, पुरुष जो उपमन्त्रण करता है वह धूम है, योनि ज्वाला है तथा जो भीतरकी ओर करता है, वह अङ्गारे हैं और उससे जो सुख होता है, वह विस्फुलिङ्ग हैं। उस इस अग्निमें देवगण वीर्यका हवन करते हैं; उस आहुतिसे गर्भ उत्पन्न होता है॥ १-२॥

नवम खण्ड

पाँचवीं आहुतिसे 'पुरुष' की उत्पत्ति

इस प्रकार पाँचवीं आहुतिके दिये जानेपर आप 'पुरुष' शब्दवाची हो जाते हैं। वह जरायुसे आवृत हुआ गर्भ दस या नौ महीने अथवा जबतक पूर्णाङ्ग नहीं होता तबतक माताकी कुक्षिके भीतर ही शयन करनेके अनन्तर फिर उत्पन्न होता है। इस प्रकार उत्पन्न होनेपर वह आयुपर्यन्त जीवित रहता है। फिर मरनेपर कर्मवश परलोकको प्रस्थित हुए उस जीवको अग्निके प्रति ही ले जाते हैं, जहाँसे कि वह आया था और जिससे उत्पन्न हुआ था॥ १-२॥

दशम खण्ड

जीवोंकी त्रिविध गति

वे जो इस प्रकार जानते हैं तथा वे जो वनमें श्रद्धा और तप इनकी उपासना करते हैं [प्राणप्रयाणके अनन्तर] अर्चि-अभिमानी देवताओंको प्राप्त होते हैं; अर्चि-अभिमानी देवताओंसे दिवसाभिमानी देवताओंको; दिवसाभिमानियोंसे शुक्लपक्षाभिमानी देवताओंको; शुक्लपक्षाभिमानियोंसे जिन छः महीनोंमें सूर्य उत्तरकी ओर जाता है, उन छः महीनोंको; उन महीनोंसे संवत्सरको; संवत्सरसे आदित्यको; आदित्यसे चन्द्रमाको और चन्द्रमासे विद्युत्को प्राप्त होते हैं। वहाँ एक अमानव पुरुष है, वह उन्हें ब्रह्मको प्राप्त करा देता है। यह देवयान-मार्ग है॥ १-२॥

तथा जो ये गृहस्थलोग ग्राममें इष्ट, पूर्त और दत्त—ऐसी उपासना करते हैं वे धूमको प्राप्त होते हैं; धूमसे रात्रिको; रात्रिसे कृष्णपक्षको तथा कृष्णपक्षसे जिन छः महीनोंमें सूर्य दक्षिण मार्गसे जाता है उनको प्राप्त होते हैं। ये लोग संवत्सरको प्राप्त नहीं होते। दक्षिणायनके महीनोंसे पितृलोकको, पितृलोकसे आकाशको और आकाशसे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं। यह चन्द्रमा राजा सोम है। वह देवताओंका अन्न है, देवतालोग उसका भक्षण करते हैं। वहाँ कर्मोंका क्षय होनेतक रहकर वे फिर इसी मार्गसे जिस प्रकार गये थे उसी प्रकार लौटते हैं [वे पहले] आकाशको प्राप्त होते हैं और आकाशसे वायुको, वायु होकर वे धूम होते हैं और धूम होकर अभ्र होते हैं। वह अभ्र होकर मेघ होता है, मेघ होकर बरसता है। तब वे जीव इस लोकमें धान, जौ, ओषधि, वनस्पति, तिल और उड़द आदि होकर उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार यह निष्क्रमण निश्चय ही अत्यन्त कष्टप्रद है। उस अन्नको जो-जो भक्षण करता है और जो-जो वीर्यसेचन करता है तद्रूप ही वह जीव हो जाता है॥ ३—६॥

उन (अनुशयी जीवों)-में जो अच्छे आचरणवाले होते हैं वे शीघ्र ही उत्तम योनिको प्राप्त होते हैं। वे ब्राह्मणयोनि, क्षत्रिययोनि अथवा वैश्ययोनि प्राप्त करते हैं तथा जो अशुभ आचरणवाले होते हैं वे तत्काल अशुभ योनिको प्राप्त होते हैं। वे कुत्तेकी योनि, सूकरयोनि अथवा चाण्डालयोनि प्राप्त करते हैं॥ ७॥

इनमेंसे वे किसी मार्गद्वारा नहीं जाते। वे ये क्षुद्र और बारम्बार आने-जानेवाले प्राणी होते हैं। 'उत्पन्न होओ और मरो' यही उनका तृतीय स्थान होता है। इसी कारण यह परलोक नहीं भरता। अतः [इस संसारगतिसे]

घृणा करनी चाहिये। इस विषयमें यह मन्त्र है—सुवर्णका चोर, मद्य पीनेवाला, गुरुस्त्रीगामी, ब्रह्महत्यारा—ये चारों पतित होते हैं और पाँचवाँ उनके साथ संसर्ग करनेवाला भी। किंतु जो इस प्रकार इन पञ्चाग्नियोंको जानता है वह उनके साथ आचरण (संसर्ग) करता हुआ भी पापसे लिप्त नहीं होता। वह शुद्ध पवित्र और पुण्यलोकका भागी होता है, जो इस प्रकार जानता है, जो इस प्रकार जानता है॥ ८—१०॥

एकादश खण्ड

प्राचीनशाल आदिका राजा अश्वपतिसे वैश्वानर आत्माके सम्बन्धमें प्रश्न

उपमन्युका पुत्र प्राचीनशाल, पुलुषका पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लविके पुत्रका पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्षका पुत्र जन और अश्वतराश्वका पुत्र बुडिल—ये महागृहस्थ और परम श्रोत्रिय एकत्रित होकर परस्पर विचार करने लगे कि हमारा आत्मा कौन है और ब्रह्म क्या है?॥ १॥

उन पूजनीयोंने स्थिर किया कि यह अरुणका पुत्र उद्दालक इस समय इस वैश्वानर आत्माको जानता है; अतः हम उसके पास चलें। ऐसा निश्चय कर वे उसके पास गये। उसने निश्चय किया कि 'ये परम श्रोत्रिय महागृहस्थ मुझसे प्रश्न करेंगे; किंतु मैं इन्हें पूरी तरहसे नहीं बतला सकूँगा; अतः मैं इन्हें दूसरा उपदेष्टा बतला दूँ।' उसने इनसे कहा—'हे पूजनीयगण! इस समय केकयकुमार अश्वपति इस वैश्वानरसंज्ञक आत्माको अच्छी तरह जानता है। आइये, हम उसीके पास चलें।' ऐसा कहकर वे उसके पास चले गये॥ २—४॥

अपने पास आये हुए उन ऋषियोंका राजाने अलग-अलग सत्कार कराया। [दूसरे दिन] प्रातःकाल उठते ही उसने कहा—'मेरे राज्यमें न तो कोई चोर ही है तथा न अदाता, मद्यप, अनाहिताग्नि, अविद्वान् और परस्त्रीगामी ही है; फिर कुलटा स्त्री तो आयी ही कहाँसे? हे पूज्यगण! मैं भी यज्ञ करनेवाला हूँ। मैं एक-एक ऋत्विक्‌को जितना धन दूँगा, उतना ही आपको भी दूँगा; अतः आपलोग यहीं ठहरिये।' वे बोले—'जिस प्रयोजनसे कोई पुरुष कहीं जाता है उसे चाहिये कि वह अपने उसी प्रयोजनको कहे। इस समय आप वैश्वानर आत्माको जानते हैं, उसीका आप हमारे प्रति वर्णन कीजिये।' वह उनसे बोला—'अच्छा, मैं प्रातःकाल आपलोगोंको इसका उत्तर दूँगा।' तब दूसरे दिन पूर्वाह्णमें वे हाथमें समिधाएँ लेकर राजाके पास गये। उनका उपनयन न करके ही राजाने उन्हें उस विद्याका उपदेश किया॥ ५—७॥

द्वादश खण्ड

अश्वपति और औपमन्यवका संवाद

[राजाने कहा—] 'उपमन्युकुमार! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो?' 'पूज्य राजन्! मैं द्युलोककी ही उपासना करता हूँ' ऐसा उसने उत्तर दिया। [राजा—] 'तुम जिस आत्माकी उपासना करते हो यह निश्चय ही 'सुतेजा' नामसे प्रसिद्ध वैश्वानर आत्मा है, इसीसे तुम्हारे कुलमें सुत, प्रसुत और आसुत दिखायी देते हैं। तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रियका दर्शन करते हो। जो इस वैश्वानर आत्माकी इस प्रकार उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रियका दर्शन करता है और उसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है। यह वैश्वानर आत्माका मस्तक है।' ऐसा राजाने कहा, और यह भी कहा कि—'यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा मस्तक गिर जाता'॥ १-२॥

त्रयोदश खण्ड

अश्वपति और सत्ययज्ञका संवाद

फिर उसने पुलुषके पुत्र सत्ययज्ञसे कहा—'प्राचीनयोग्य! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो?' वह बोला—'पूज्य राजन्! मैं आदित्यकी ही उपासना करता हूँ।' [राजाने कहा—] 'यह निश्चय ही विश्वरूप

वैश्वानर आत्मा है, जिस आत्माकी तुम उपासना करते हो; इसीसे तुम्हारे कुलमें बहुत-सा विश्वरूप साधन दिखायी देता है। खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ और दासियोंके सहित हार प्राप्त है। तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रियका दर्शन करते हो। जो इस प्रकार इस वैश्वानर आत्माकी उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रियका दर्शन करता है और उसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है। किंतु यह आत्माका नेत्र ही है।' ऐसा राजाने कहा और यह भी कहा कि—'यदि तुम मेरे पास न आते तो अन्धे हो जाते'॥ १-२॥

चतुर्दश खण्ड

अश्वपति और इन्द्रद्युम्नका संवाद

तदनन्तर राजाने भाल्लवेय इन्द्रद्युम्नसे कहा—'वैयाघ्रपद्य! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो?' वह बोला—'पूज्य राजन्! मैं वायुकी ही उपासना करता हूँ।' [राजाने कहा—] 'जिस आत्माकी तुम उपासना करते हो वह निश्चय ही पृथग्वर्त्मा वैश्वानर आत्मा है; इसीसे तुम्हारे प्रति पृथक्-पृथक् उपहार आते हैं और तुम्हारे पीछे पृथक्-पृथक् रथकी पङ्क्तियाँ चलती हैं। तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रियका दर्शन करते हो। जो कोई इस प्रकार इस वैश्वानर आत्माकी उपासना करता है, यह अन्न भक्षण करता है, प्रियका दर्शन करता है और उसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है। किंतु यह आत्माका प्राण ही है।' ऐसा राजाने कहा और यह भी कहा कि—'यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा प्राण उत्क्रमण कर जाता'॥ १-२॥

पञ्चदश खण्ड

अश्वपति और जनका संवाद

तदनन्तर राजाने जनसे कहा—'शार्कराक्ष्य! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो?' उसने कहा—'पूज्य राजन्! मैं आकाशकी ही उपासना करता हूँ।' [राजा बोला—] 'यह निश्चय ही बहुलसंज्ञक वैश्वानर आत्मा है जिसकी कि तुम उपासना करते हो। इसीसे तुम प्रजा और धनके कारण बहुल हो। तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रियका दर्शन करते हो। जो इस प्रकार इस वैश्वानर आत्माकी उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रियका दर्शन करता है और उसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है। किंतु यह आत्माका संदेह (शरीरका मध्यभाग) ही है।' ऐसा राजाने कहा और यह भी कहा कि—'यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा संदेह (शरीरका मध्यभाग) नष्ट हो जाता'॥ १-२॥

षोडश खण्ड

अश्वपति और बुडिलका संवाद

फिर उसने अश्वतराश्वके पुत्र बुडिलसे कहा—'वैयाघ्रपद्य! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो?' उसने कहा—'पूज्य राजन्! मैं तो जलकी ही उपासना करता हूँ।' [राजा बोला—] 'जिसकी तुम उपासना करते हो वह निश्चय ही रयिसंज्ञक वैश्वानर आत्मा है; इसीसे तुम रयिमान् (धनवान्) और पुष्टिमान् हो। तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रियका दर्शन करते हो। जो पुरुष इस वैश्वानर आत्माकी इस प्रकार उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रियका दर्शन करता है और उसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है; किंतु यह आत्माका बस्ति ही है।' ऐसा राजाने कहा और यह भी कहा कि—'यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारा बस्तिस्थान फट जाता'॥ १-२॥

सप्तदश खण्ड

अश्वपति और उद्दालकका संवाद

तत्पश्चात् राजाने अरुणके पुत्र उद्दालकसे कहा—'गौतम! तुम किस आत्माकी उपासना करते हो?' उसने कहा—'पूज्य राजन्! मैं तो पृथिवीकी ही उपासना करता हूँ।' [राजा बोला—] 'जिसकी तुम उपासना करते हो यह निश्चय ही प्रतिष्ठासंज्ञक वैश्वानर आत्मा है। इसीसे तुम प्रजा और पशुओंके कारण प्रतिष्ठित हो। तुम अन्न भक्षण करते हो और प्रियका दर्शन करते हो। जो कोई इस वैश्वानर आत्माकी इस प्रकार उपासना करता है वह अन्न भक्षण करता है, प्रियका दर्शन करता है और उसके कुलमें ब्रह्मतेज होता है। किंतु यह आत्माके चरण ही हैं।' ऐसा उसने कहा और यह भी कहा कि—'यदि तुम मेरे पास न आते तो तुम्हारे चरण शिथिल हो जाते'॥ १-२॥

अष्टादश खण्ड

अश्वपतिका वैश्वानर आत्माके सम्बन्धमें उपदेश

राजाने उनसे कहा—'तुम सब लोग इस वैश्वानर आत्माको अलग-सा जानकर अन्न भक्षण करते हो। जो कोई 'यही मैं हूँ' इस प्रकार अभिमानका विषय होनेवाले इस प्रादेशमात्र वैश्वानर आत्माकी उपासना करता है वह समस्त लोकोंमें, समस्त प्राणियोंमें और समस्त आत्माओंमें अन्न भक्षण करता है। उस इस वैश्वानर आत्माका मस्तक ही सुतेजा (द्युलोक) है, चक्षु विश्वरूप (सूर्य) है, प्राण पृथग्वर्त्मा (वायु) है, देहका मध्यभाग बहुल (आकाश) है, बस्ति ही रयि (जल) है, पृथिवी ही दोनों चरण हैं, वक्षःस्थल वेदी है, लोम दर्भ हैं, हृदय गार्हपत्याग्नि है, मन अन्वाहार्यपचन है और मुख आहवनीय है'॥ १-२॥

एकोनविंश खण्ड

'प्राणाय स्वाहा' से पहली आहुति

अतः जो अन्न पहले आवे उसका हवन करना चाहिये, उस समय वह भोक्ता जो पहली आहुति दे उसे '**प्राणाय स्वाहा**' ऐसा कहकर दे। इस प्रकार प्राण तृप्त होता है। प्राणके तृप्त होनेपर नेत्रेन्द्रिय तृप्त होती है, नेत्रेन्द्रियके तृप्त होनेपर सूर्य तृप्त होता है, सूर्यके तृप्त होनेपर द्युलोक तृप्त होता है तथा द्युलोकके तृप्त होनेपर जिस किसीपर द्युलोक और आदित्य (स्वामिभावसे) अधिष्ठित हैं वह तृप्त होता है और उसकी तृप्ति होनेपर स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेजके द्वारा तृप्त होता है॥ १-२॥

विंश खण्ड

'व्यानाय स्वाहा' से दूसरी आहुति

तत्पश्चात् जो दूसरी आहुति दे उसे '**व्यानाय स्वाहा**' ऐसा कहकर देना चाहिये। इससे व्यान तृप्त होता है। व्यानके तृप्त होनेपर श्रोत्रेन्द्रिय तृप्त होती है, श्रोत्रके तृप्त होनेपर चन्द्रमा तृप्त होता है, चन्द्रमाके तृप्त होनेपर दिशाएँ तृप्त होती हैं तथा दिशाओंके तृप्त होनेपर जिस किसीपर चन्द्रमा और दिशाएँ [स्वामिभावसे] अधिष्ठित हैं वह तृप्त होता है। उसकी तृप्तिके पश्चात् वह भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेजके द्वारा तृप्त होता है॥ १-२॥

एकविंश खण्ड

'अपानाय स्वाहा' से तीसरी आहुति

फिर जो तीसरी आहुति दे उसे '**अपानाय स्वाहा**' ऐसा कहकर देना चाहिये। इससे अपान तृप्त होता है। अपानके तृप्त होनेपर वागिन्द्रिय तृप्त होती है, वाक्‌के तृप्त होनेपर अग्नि तृप्त होता है, अग्निके तृप्त होनेपर पृथिवी तृप्त होती है तथा पृथिवीके तृप्त होनेपर जिस किसीपर पृथिवी और अग्नि (स्वामिभावसे) अधिष्ठित हैं वह तृप्त होता है; एवं उसकी तृप्तिके पश्चात् भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेजके द्वारा तृप्त होता है॥ १-२॥

द्वाविंश खण्ड

'समानाय स्वाहा' से चौथी आहुति

तदनन्तर जो चौथी आहुति दे उसे '**समानाय स्वाहा**' ऐसा कहकर देना चाहिये। इससे समान तृप्त होता है। समानके तृप्त होनेपर मन तृप्त होता है, मनके तृप्त होनेपर पर्जन्य तृप्त होता है, पर्जन्यके तृप्त होनेपर विद्युत् तृप्त होती है तथा विद्युत्‌के तृप्त होनेपर जिस किसीके ऊपर विद्युत् और पर्जन्य अधिष्ठित हैं वह तृप्त होता है; एवं उसकी तृप्तिके अनन्तर भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेजके द्वारा तृप्त होता है॥ १-२॥

त्रयोविंश खण्ड

'उदानाय स्वाहा' से पाँचवीं आहुति

फिर जो पाँचवीं आहुति दे उसे '**उदानाय स्वाहा**' ऐसा कहकर देना चाहिये। इससे उदान तृप्त होता है। उदानके तृप्त होनेपर त्वचा तृप्त होती है, त्वचाके तृप्त होनेपर वायु तृप्त होता है, वायुके तृप्त होनेपर आकाश तृप्त होता है तथा आकाशके तृप्त होनेपर जिस किसीपर वायु और आकाश (स्वामिभावसे) अधिष्ठित हैं वह तृप्त होता है और उसकी तृप्तिके पश्चात् स्वयं भोक्ता प्रजा, पशु, अन्नाद्य, तेज और ब्रह्मतेजके द्वारा तृप्त होता है॥ १-२॥

चतुर्विंश खण्ड

भोजनकी अग्निहोत्रत्वसिद्धिके लिये इस प्रकार हवन करनेका फल

वह, जो कि इस वैश्वानरविद्याको न जानकर हवन करता है उसका वह हवन ऐसा है, जैसे अङ्गारोंको हटाकर भस्ममें हवन करे; क्योंकि जो इस (वैश्वानर)-को इस प्रकार जाननेवाला पुरुष अग्निहोत्र करता है उसका समस्त लोक, सारे भूत और सम्पूर्ण आत्माओंमें हवन हो जाता है॥ १-२॥

इस विषयमें यह दृष्टान्त भी है—जिस प्रकार सींकका अग्रभाग अग्निमें घुसा देनेसे तत्काल जल जाता है उसी प्रकार जो इस प्रकार जाननेवाला होकर अग्निहोत्र करता है उसके समस्त पाप भस्म हो जाते हैं। अतः वह इस प्रकार जाननेवाला यदि चाण्डालको उच्छिष्ट भी दे तो भी उसका वह अन्न वैश्वानर आत्मामें ही हुत होगा। इस विषयमें यह मन्त्र है। जिस प्रकार इस लोकमें भूखे बालक सब प्रकार माताकी उपासना करते हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणी अग्निहोत्रकी उपासना करते हैं, अग्निहोत्रकी उपासना करते हैं॥ ३—५॥

॥ पञ्चम अध्याय समाप्त॥ ५॥

ॐ

षष्ठ अध्याय

प्रथम खण्ड

आरुणिका अपने पुत्र श्वेतकेतुसे प्रश्न

अरुणका सुप्रसिद्ध पौत्र श्वेतकेतु था; उससे पिताने कहा—'श्वेतकेतो! तू ब्रह्मचर्यवास कर; क्योंकि सोम्य! हमारे कुलमें उत्पन्न हुआ कोई भी पुरुष अध्ययन न करके ब्रह्मबन्धु-सा नहीं होता'॥ १॥

वह श्वेतकेतु बारह वर्षकी अवस्थामें उपनयन करा चौबीस वर्षका होनेपर सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन कर अपनेको बड़ा बुद्धिमान् और व्याख्यान करनेवाला मानते हुए अनम्रभावसे घर लौटा। उससे पिताने कहा—'सोम्य! तू जो ऐसा महामना, पाण्डित्यका अभिमानी और अविनीत है सो क्या तूने वह आदेश पूछा है जिसके द्वारा अश्रुत श्रुत हो जाता है; अमत मत हो जाता है और अविज्ञात विशेषरूपसे ज्ञात हो जाता है।' [यह सुनकर श्वेतकेतुने पूछा—] 'भगवन्! वह आदेश कैसा है?'॥ २-३॥

[पिताने कहा—] 'सोम्य! जिस प्रकार एक मृत्तिकाके पिण्डके द्वारा सम्पूर्ण मृण्मय पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है कि विकार केवल वाणीके आश्रयभूत नाममात्र हैं, सत्य तो केवल मृत्तिका ही है। सोम्य! जिस प्रकार एक लोहमणिका ज्ञान होनेपर सम्पूर्ण लोहमय (सुवर्णमय) पदार्थ जान लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणीपर अवलम्बित नाममात्र है, सत्य केवल सुवर्ण ही है। सोम्य! जिस प्रकार एक नखकृन्तन (नहन्ना) के ज्ञानसे सम्पूर्ण लोहेके पदार्थ जान लिये जाते हैं, क्योंकि विकार वाणीपर अवलम्बित केवल नाममात्र है, सत्य केवल लोहा ही है; सोम्य! ऐसा ही वह आदेश भी है'॥ ४—६॥

[श्वेतकेतुने कहा—] 'निश्चय ही वे मेरे पूज्य गुरुदेव इसे नहीं जानते थे। यदि वे जानते तो मुझसे क्यों न कहते। अब आप ही मुझे वह बतलाइये।' तब पिताने कहा—'अच्छा, सोम्य! बतलाता हूँ'॥ ७॥

द्वितीय खण्ड

सत्‌रूप परमात्मासे जगत्‌की उत्पत्ति

सोम्य! आरम्भमें यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था। उसीके विषयमें किन्हींने ऐसा भी कहा है कि आरम्भमें यह एकमात्र अद्वितीय असत् ही था। उस असत्‌से सत्‌की उत्पत्ति होती है। किंतु हे सोम्य! ऐसा कैसे हो सकता है, भला असत्‌से सत्‌की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? अतः हे सोम्य! आरम्भमें यह एकमात्र अद्वितीय सत् ही था, ऐसे [आरुणिने] कहा। उस (सत्)-ने ईक्षण किया 'मैं बहुत हो जाऊँ—अनेक प्रकारसे उत्पन्न होऊँ'। इस प्रकार [ईक्षणकर] उसने तेज उत्पन्न किया। उस तेजने ईक्षण किया, 'मैं बहुत हो जाऊँ—नाना प्रकारसे उत्पन्न होऊँ'। इस प्रकार [ईक्षणकर] उसने जलकी रचना की। इसीसे जहाँ कहीं पुरुष शोक (सन्ताप) करता है उसे पसीने आ जाते हैं। उस समय वह तेजसे ही जलकी उत्पत्ति होती है। उस जलने ईक्षण किया, 'हम बहुत हो जायँ—अनेक रूपसे उत्पन्न हों।' उसने अन्नकी रचना की। इसीसे जहाँ कहीं वर्षा होती है वहीं बहुत-सा अन्न होता है। वह अन्नाद्य जलसे ही उत्पन्न होता है॥ १—४॥

तृतीय खण्ड

आण्डज, जीवज और उद्भिज्जरूपमें त्रिविध सृष्टि

उन इन [पक्षी आदि] प्रसिद्ध प्राणियोंके तीन ही बीज होते हैं—आण्डज, जीवज और उद्भिज्ज। उस इस ['सत्' नामवाली] देवताने ईक्षण किया, 'मैं इस जीवात्मरूपसे इन तीनों देवताओंमें अनुप्रवेश कर नाम और रूपकी अभिव्यक्ति करूँ और उनमेंसे एक-एक देवताको त्रिवृत्-त्रिवृत् करूँ।' ऐसा

विचारकर उस इस देवताने इस जीवात्मरूपसे ही उन तीन देवताओंमें अनुप्रवेश कर नाम-रूपका व्याकरण किया। उस देवताने उनमेंसे प्रत्येकको त्रिवृत्-त्रिवृत् किया। सोम्य! जिस प्रकार ये तीनों देवता एक-एक करके प्रत्येक त्रिवृत्-त्रिवृत् हैं वह मेरे द्वारा जान॥ १—४॥

चतुर्थ खण्ड

त्रिवृत्करण

अग्निका जो रोहित (लाल) रूप है वह तेजका ही रूप है; जो शुक्ल रूप है वह जलका है और जो कृष्ण है वह अन्नका है। इस प्रकार अग्निसे अग्नित्व निवृत्त हो गया, क्योंकि [अग्निरूप] विकार वाणीसे कहनेके लिये नाममात्र है; केवल तीन रूप हैं—इतना ही सत्य है। आदित्यका जो रोहित रूप है वह तेजका रूप है, जो शुक्ल रूप है वह जलका है और जो कृष्ण रूप है वह अन्नका है। इस प्रकार आदित्यसे आदित्यत्व निवृत्त हो गया, क्योंकि [आदित्यरूप] विकार वाणीपर अवलम्बित नाममात्र है, तीन रूप हैं—इतना ही सत्य है। चन्द्रमाका जो रोहित रूप है वह तेजका रूप है, जो शुक्ल रूप है वह जलका है और जो कृष्ण रूप है वह अन्नका है। इस प्रकार चन्द्रमासे चन्द्रत्व निवृत्त हो गया, क्योंकि [चन्द्रमारूप] विकार वाणीपर अवलम्बित नाममात्र है, तीन रूप हैं—इतना ही सत्य है। विद्युत्का जो रोहित रूप है वह तेजका रूप है, जो शुक्ल रूप है वह जलका है और जो कृष्ण रूप है वह अन्नका है। इस प्रकार विद्युत्से विद्युत्त्वकी निवृत्ति हो गयी, क्योंकि [विद्युत्रूप] विकार वाणीपर अवलम्बित नाममात्र है, तीन रूप हैं—इतना ही सत्य है॥ १—४॥

इस (त्रिवृत्करण)-को जाननेवाले पूर्ववर्ती महागृहस्थ और महाश्रोत्रियोंने यह कहा था कि इस समय हमारे कुलमें कोई बात अश्रुत, अमत अथवा अविज्ञात है—ऐसा कोई नहीं कह सकेगा, क्योंकि इन अग्नि आदिके दृष्टान्तद्वारा वे सब कुछ जानते थे। जो कुछ रोहित-सा है वह तेजका रूप है—ऐसा उन्होंने जाना है; जो शुक्ल-सा है वह जलका रूप है—ऐसा उन्होंने जाना है तथा जो कृष्ण-सा है वह अन्नका रूप है—ऐसा उन्होंने जाना है। तथा जो कुछ विज्ञात-सा है वह इन देवताओंका ही समुदाय है—ऐसा उन्होंने जाना है। सोम्य! अब तू मेरे द्वारा यह जान कि किस प्रकार ये तीनों देवता पुरुषको प्राप्त होकर उनमेंसे प्रत्येक त्रिवृत्-त्रिवृत् हो जाती है॥ ५—७॥

पञ्चम खण्ड

मन अन्नमय, प्राण जलमय और वाक् तेजोमय है

खाया हुआ अन्न तीन प्रकारका हो जाता है। उसका जो अत्यन्त स्थूल भाग होता है, वह मल हो जाता है, जो मध्यम भाग है वह मांस हो जाता है और जो अत्यन्त सूक्ष्म होता है वह मन हो जाता है। पीया हुआ जल तीन प्रकारका हो जाता है। उसका जो स्थूलतम भाग होता है वह मूत्र हो जाता है, जो मध्यम भाग है वह रक्त हो जाता है और जो सूक्ष्मतम भाग है वह प्राण हो जाता है। खाया हुआ [घृतादि] तेज तीन प्रकारका हो जाता है। उसका जो स्थूलतम भाग होता है वह हड्डी हो जाता है, जो मध्यम भाग है वह मज्जा हो जाता है और जो सूक्ष्मतम भाग है वह वाक् हो जाता है। [इसलिये] सोम्य! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाक् तेजोमयी है। ऐसा कहे जानेपर श्वेतकेतु बोला—'भगवन्! आप मुझे फिर समझाइये।' तब आरुणिने 'अच्छा सोम्य!' ऐसा कहा॥ १—४॥

षष्ठ खण्ड

मथे जाते हुए दहीका दृष्टान्त

सोम्य! मथे जाते हुए दहीका जो सूक्ष्म भाग होता है, वह ऊपर इकट्ठा हो जाता है; वह घृत होता है। उसी प्रकार हे सोम्य! खाये हुए अन्नका जो सूक्ष्म अंश होता है वह सम्यक् प्रकारसे ऊपर आ जाता है; वह मन होता

है। सोम्य! पीये हुए जलका जो सूक्ष्म भाग होता है वह इकट्ठा होकर ऊपर आ जाता है; वह प्राण होता है। सोम्य! भक्षण किये हुए तेजका जो सूक्ष्म भाग होता है वह इकट्ठा होकर ऊपर आ जाता है और वह वाणी होता है। इस प्रकार हे सोम्य! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाणी तेजोमयी है—ऐसा [आरुणिने कहा]। [तब श्वेतकेतु बोला—] 'भगवन्! मुझे फिर समझाइये।' इसपर आरुणिने कहा—'सोम्य! अच्छा'॥ १—५॥

सप्तम खण्ड

मनकी अन्नमयताका निश्चय

सोम्य! पुरुष सोलह कलाओंवाला है। तू पंद्रह दिन भोजन मत कर, केवल यथेच्छ जलपान कर। प्राण जलमय है; इसलिये जल पीते रहनेसे उसका नाश नहीं होगा। उसने पंद्रह दिन भोजन नहीं किया। तत्पश्चात् वह उस (आरुणि)-के पास आया [और बोला]—'भगवन्! क्या बोलूँ?' [पिताने कहा—] 'सोम्य! **ऋक्, यजुः** और **साम**का पाठ करो।' तब उसने कहा—'भगवन्! मुझे उनका स्फुरण नहीं होता।' वह उससे बोला—'सोम्य! जिस प्रकार बहुत-से ईंधनसे प्रज्वलित हुए अग्निका एक जुगनूके बराबर अङ्गारा रह जाय तो वह उससे अधिक दाह नहीं कर सकता, उसी प्रकार सोम्य! तेरी सोलह कलाओंमेंसे केवल एक ही कला रह गयी है। उसके द्वारा इस समय तू वेदका अनुभव नहीं कर सकता। अच्छा, अब भोजन कर; तब तू मेरी बात समझ जायगा'॥ १—३॥

उसने भोजन किया और फिर उस (आरुणि)-के पास आया। तब उसने जो कुछ पूछा वह सब उसे उपस्थित हो गया। उससे [आरुणिने] कहा—'सोम्य! जिस प्रकार बहुत-से ईंधनसे बढ़े हुए अग्निका एक खद्योतमात्र अङ्गारा रह जाय और उसे तृणसे सम्पन्नकर प्रज्वलित कर दिया जाय तो वह उसकी (अपने पूर्व परिमाणकी) अपेक्षा भी अधिक दाह कर सकता है। इसी प्रकार सोम्य! तेरी सोलह कलाओंमेंसे एक कला अवशिष्ट रह गयी थी। वह अन्नद्वारा वृद्धिको प्राप्त अर्थात् प्रज्वलित कर दी गयी। अब उसीसे तू वेदोंका अनुभव कर रहा है। अतः हे सोम्य! मन अन्नमय है, प्राण जलमय है और वाक् तेजोमयी है।' इस प्रकार [श्वेतकेतु] उसके इस कथनको विशेषरूपसे समझ गया, समझ गया॥ ४—६॥

अष्टम खण्ड

सत्—आत्मा ही सबका मूल है

उद्दालक नामसे प्रसिद्ध अरुणके पुत्रने अपने पुत्र श्वेतकेतुसे कहा—'सोम्य! तू मेरे द्वारा स्वप्नान्त (सुषुप्ति अथवा स्वप्नके स्वरूप)-को विशेषरूपसे समझ ले; जिस अवस्थामें यह पुरुष 'सोता है' ऐसा कहा जाता है उस समय सोम्य! यह सत्से सम्पन्न हो जाता है—यह अपने स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। इसीसे इसे 'स्वपिति' ऐसा कहते हैं; क्योंकि उस समय यह स्व—अपनेको ही प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार डोरीमें बँधा हुआ पक्षी दिशा-विदिशाओंमें उड़कर अन्यत्र स्थान न मिलनेपर अपने बन्धनस्थानका ही आश्रय लेता है उसी प्रकार निश्चय ही सोम्य! यह मन दिशा-विदिशाओंमें उड़कर अन्यत्र स्थान न मिलनेसे प्राणका ही आश्रय लेता है, क्योंकि सोम्य! मन प्राणरूप बन्धनवाला ही है॥ १-२॥

'सोम्य! तू मेरे द्वारा भूख और प्यासको जान। जिस समय यह पुरुष 'अशिशिषति' (खाना चाहता है) ऐसे नामवाला होता है उस समय जल ही इसके भक्षण किये हुए अन्नको ले जाता है। जिस प्रकार लोकमें [गौ ले जानेवालेको] गोनाय, [अश्व ले जानेवालेको] अश्वनाय और [पुरुषोंको ले जानेवाले राजा या सेनापतिको] पुरुषनाय कहते हैं उसी प्रकार जलको 'अशनाय' ऐसा कहकर पुकारते हैं। हे सोम्य! उस जलसे ही तू इस [शरीररूप] शुङ्ग (अङ्कुर) को उत्पन्न हुआ समझ; क्योंकि यह निर्मूल (कारणरहित) नहीं हो सकता। अन्नको छोड़कर इसका मूल और कहाँ हो सकता है? इसी प्रकार सोम्य! तू अन्नरूप अङ्कुरके द्वारा जलरूप मूलको खोज और हे सोम्य!

जलरूप अङ्कुरके द्वारा तेजोरूप मूलको खोज तथा तेजोरूप अङ्कुरके द्वारा सद्रूप मूलका अनुसन्धान कर। सोम्य! इस प्रकार यह सारी प्रजा सन्मूलक है तथा सत् ही इसका आश्रय है और सत् ही प्रतिष्ठा है॥ ३-४॥

अब जिस समय यह पुरुष '**पिपासति**' (पीना चाहता है) ऐसे नामवाला होता है तो उसके पीये हुए जलको तेज ही ले जाता है। अतः जिस प्रकार गोनाय, अश्वनाय एवं पुरुषनाय कहलाते हैं उसी प्रकार उस तेजको 'उदन्या' ऐसा कहकर पुकारते हैं। हे सोम्य! उस (जलरूप मूल)-से यह शरीररूप अङ्कुर उत्पन्न हुआ है—ऐसा जान; क्योंकि यह मूलरहित नहीं हो सकता॥ ५॥

सोम्य! उस (जलके परिणामभूत शरीर)-का जलके सिवा और कहाँ मूल हो सकता है? हे प्रियदर्शन! जलरूप अङ्कुरके द्वारा तू तेजोरूप मूलकी खोज कर और हे सोम्य! तेजोरूप अङ्कुरके द्वारा सद्रूप मूलकी शोध कर। हे सोम्य! यह सम्पूर्ण प्रजा सन्मूलक तथा सद्रूप आयतन और सद्रूप प्रतिष्ठा (लयस्थान) वाली है। हे सोम्य! जिस प्रकार ये तीनों देवताएँ पुरुषको प्राप्त होकर उनमेंसे प्रत्येक त्रिवृत्-त्रिवृत् हो जाती हैं, वह मैंने पहले ही कह दिया। हे सोम्य! मरणको प्राप्त होते हुए इस पुरुषकी वाक् मनमें लीन हो जाती है तथा मन प्राणमें, प्राण तेजमें और तेज परदेवतामें लीन हो जाता है। वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो! वही तू है। [आरुणिके इस प्रकार कहनेपर श्वेतकेतु बोला—] 'भगवन्! मुझे फिर समझाइये।' [तब आरुणिने] 'अच्छा, सोम्य!' ऐसा कहा॥ ६-७॥

नवम खण्ड

मधुका दृष्टान्त

सोम्य! जिस प्रकार मधुमक्खियाँ मधु निष्पन्न करती हैं तो नाना दिशाओंके वृक्षोंका रस लाकर एकताको प्राप्त करा देती हैं। वे रस जिस प्रकार उस मधुमें इस प्रकारका विवेक प्राप्त नहीं कर सकते कि 'मैं इस वृक्षका रस हूँ और मैं इस वृक्षका रस हूँ' हे सोम्य! ठीक इसी प्रकार यह सम्पूर्ण प्रजा सत्को प्राप्त होकर यह नहीं जानती कि हम सत्को प्राप्त हो गये हैं। वे इस लोकमें व्याघ्र, सिंह, भेड़िया, शूकर, कीट, पतङ्ग, डाँस अथवा मच्छर जो-जो भी [सुषुप्ति आदिसे पूर्व] होते हैं वे ही पुनः हो जाते हैं॥ १—३॥

वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और श्वेतकेतो! वही तू है। [आरुणिके इस प्रकार कहनेपर श्वेतकेतु बोला—] 'भगवन्! मुझे फिर समझाइये।' [तब आरुणिने] 'अच्छा, सोम्य!' ऐसा कहा॥ ४॥

दशम खण्ड

नदियोंका दृष्टान्त

सोम्य! ये नदियाँ पूर्ववाहिनी होकर पूर्वकी ओर बहती हैं तथा पश्चिमवाहिनी होकर पश्चिमकी ओर। वे समुद्रसे निकलकर फिर समुद्रमें ही मिल जाती हैं और वह समुद्र ही हो जाता है। वे सब जिस प्रकार वहाँ (समुद्रमें) यह नहीं जानतीं कि 'यह मैं हूँ, यह मैं हूँ'। ठीक इसी प्रकार सोम्य! ये सम्पूर्ण प्रजाएँ सत्से आनेपर यह नहीं जानतीं कि हम सत्के पाससे आयी हैं। इस लोकमें वे व्याघ्र, सिंह, शूकर, कीट, पतङ्ग, डाँस अथवा मच्छर जो-जो भी होते हैं वे ही फिर हो जाते हैं। वह जो यह अणिमा है, एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो! वही तू है। [आरुणिके इस प्रकार कहनेपर श्वेतकेतु बोला—] 'भगवन्! मुझे फिर समझाइये।' [तब आरुणिने] 'अच्छा सोम्य!' ऐसा कहा॥ १—३॥

एकादश खण्ड

वृक्षका दृष्टान्त

हे सोम्य! यदि कोई इस महान् वृक्षके मूलमें आघात करे तो यह जीवित रहते हुए केवल रसस्राव करेगा और यदि इसके अग्रभागमें आघात करे तो भी यह जीवित रहते हुए ही रसस्राव करेगा। यह वृक्ष जीव—आत्मासे ओतप्रोत है और जलपान करता हुआ आनन्दपूर्वक स्थित है। यदि इस वृक्षकी एक शाखाको जीव छोड़ देता है तो वह सूख जाती है; यदि दूसरीको छोड़ देता है तो वह सूख जाती है; और तीसरीको छोड़ देता है तो वह भी सूख जाती है, इसी प्रकार यदि सारे वृक्षको छोड़ देता है तो सारा वृक्ष सूख जाता है। 'सोम्य! ठीक इसी प्रकार तू जान कि जीवसे रहित होनेपर यह शरीर मर जाता है, जीव नहीं मरता'—ऐसा [आरुणिने] कहा, 'वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो! वही तू है।' [आरुणिके इस प्रकार कहनेपर श्वेतकेतु बोला—] 'भगवन्! मुझे फिर समझाइये!' [तब आरुणिने] 'अच्छा, सोम्य!' ऐसा कहा॥ १—३॥

द्वादश खण्ड

वट-बीजका दृष्टान्त

इस (सामनेवाले वटवृक्ष)-से एक बड़का फल ले आ। [श्वेतकेतु—] 'भगवन्! यह ले आया।' [आरुणि—] 'इसे फोड़।' (श्वेत०—) 'भगवन्! फोड़ दिया।' [आरुणि—] 'इसमें क्या देखता है?' [श्वेत०—] 'भगवन्! इसमें ये अणुके समान दाने हैं।' [आरुणि—] 'अच्छा वत्स! इनमेंसे एकको फोड़' [श्वेत०—] 'फोड़ दिया भगवन्!' [आरुणि—] 'इसमें क्या देखता है?' [श्वेत०—] 'कुछ नहीं भगवन्!' तब उससे [आरुणिने] कहा—'हे सोम्य! इस वटबीजकी जिस अणिमाको तू नहीं देखता, सोम्य! उस अणिमाका ही यह इतना बड़ा वटवृक्ष खड़ा हुआ है। हे सोम्य! तू [इस कथनमें] श्रद्धा कर।' वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और श्वेतकेतो! वही तू है। [आरुणिके इस प्रकार कहनेपर श्वेतकेतु बोला—] 'भगवन्! मुझे फिर समझाइये।' [तब आरुणिने] 'अच्छा, सोम्य!' ऐसा कहा॥ १—३॥

त्रयोदश खण्ड

नमकका दृष्टान्त

'इस नमकको जलमें डालकर कल प्रातःकाल मेरे पास आना।' आरुणिके इस प्रकार कहनेपर श्वेतकेतुने वैसा ही किया। तब आरुणिने उससे कहा—'वत्स! रात तुमने जो नमक जलमें डाला था उसे ले आओ।' किंतु उसने ढूँढनेपर उसे उसमें न पाया। [आरुणि—] 'जिस प्रकार वह नमक इसीमें विलीन हो गया है [इसलिये तू उसे नेत्रसे नहीं देख सकता, उसे यदि जानना चाहता है तो] इस जलको ऊपरसे आचमन कर।' [उसके आचमन करनेपर आरुणिने पूछा]—'कैसा है?' [श्वेत०—] 'नमकीन है।' [आरुणि—] 'बीचमेंसे आचमन कर' 'अब कैसा है?' [श्वेत०—] 'नमकीन है।' [आरुणि—] 'नीचेसे आचमन कर' 'अब कैसा है?' [श्वेत०—] 'नमकीन है।' [आरुणि] 'अच्छा, अब इस जलको फेंककर मेरे पास आ।' उसने वैसा ही किया, [और बोला—] 'उस जलमें नमक सदा ही विद्यमान था।' तब उससे पिताने कहा—'सोम्य! [इसी प्रकार] वह सत् भी निश्चय यहीं विद्यमान है, तू उसे देखता नहीं है; परंतु वह निश्चय यहीं विद्यमान है।' वह जो यह अणिमा है एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और श्वेतकेतो! वही तू है। [आरुणिके इस प्रकार कहनेपर श्वेतकेतु बोला—] 'भगवन्! मुझे फिर समझाइये।' [तब आरुणिने] 'अच्छा, सोम्य!' ऐसा कहा॥ १—३॥

चतुर्दश खण्ड

आँख बँधे हुए पुरुषका दृष्टान्त

हे सोम्य! जिस प्रकार [कोई चोर] जिसकी आँखें बँधी हुई हों ऐसे किसी पुरुषको गान्धार देशसे लाकर जनशून्य स्थानमें छोड़ दे। उस जगह जिस प्रकार वह पूर्व, उत्तर, दक्षिण अथवा पश्चिमकी ओर मुख करके चिल्लावे कि 'मुझे आँखें बाँधकर यहाँ लाया गया है और आँखें बँधे हुए ही छोड़ दिया गया है।' उस पुरुषके बन्धनको खोलकर जैसे कोई कहे कि 'गान्धार देश इस दिशामें है, अतः इसी दिशाको जा', तो वह बुद्धिमान् और समझदार पुरुष एक ग्रामसे दूसरा ग्राम पूछता हुआ गान्धारमें ही पहुँच जाता है, इसी प्रकार इस लोकमें आचार्यवान् पुरुष ही [सत्को] जानता है; उसके लिये [मोक्ष होनेमें] उतना ही विलम्ब है जबतक कि वह [देहबन्धनसे] मुक्त नहीं होता। उसके पश्चात् तो वह सत्सम्पन्न (ब्रह्मको प्राप्त) हो जाता है। वह जो यह अणिमा है, एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो! वही तू है। [आरुणिके इस प्रकार कहनेपर श्वेतकेतु बोला—] 'भगवन्! मुझे फिर समझाइये।' [तब आरुणिने] 'अच्छा, सोम्य!' ऐसा कहा॥ १—३॥

पञ्चदश खण्ड

मुमूर्षुका दृष्टान्त

सोम्य! [ज्वरादिसे] सन्तप्त [मुमूर्षु] पुरुषको चारों ओरसे घेरकर उसके बान्धवगण पूछा करते हैं—'क्या तू मुझे जानता है? क्या तू मुझे पहचानता है?' जबतक उसकी वाणी मनमें लीन नहीं होती तथा मन प्राणमें, प्राण तेजमें और तेज परदेवतामें लीन नहीं होता तबतक वह पहचान लेता है। फिर जिस समय उसकी वाणी मनमें लीन हो जाती है तथा मन प्राणमें, प्राण तेजमें और तेज परदेवतामें लीन हो जाता है, तब वह नहीं पहचानता। वह जो यह अणिमा है; एतद्रूप ही यह सब है। वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो! वही तू है। [आरुणिके इस प्रकार कहनेपर श्वेतकेतु बोला—] 'भगवन्! मुझे फिर समझाइये।' [तब आरुणिने] 'अच्छा, सोम्य!' ऐसा कहा॥ १—३॥

षोडश खण्ड

मिथ्या ज्ञानी और सच्चे ज्ञानीकी पहचान

हे सोम्य! [राजकर्मचारी] किसी पुरुषको हाथ बाँधकर लाते हैं [और कहते हैं—] 'इसने धनका अपहरण किया है, चोरी की है इसके लिये परशु तपाओ।' वह यदि उसका (चोरीका) करनेवाला होता है तो अपनेको मिथ्यावादी प्रमाणित करता है। वह मिथ्याभिनिवेशवाला पुरुष अपनेको मिथ्यासे छिपाता हुआ तपे हुए परशुको ग्रहण करता है; किंतु वह उससे दग्ध होता है और मारा जाता है और यदि वह उस (चोरी)-का करनेवाला नहीं होता तो उसीसे वह अपनेको सत्य प्रमाणित करता है। वह सत्याभिसन्ध अपनेको सत्यसे आवृत कर उस तपे हुए परशुको पकड़ लेता है। वह उससे नहीं जलता और तत्काल छोड़ दिया जाता है। वह जिस प्रकार उस [परीक्षाके] समय नहीं जलता [उसी प्रकार विद्वान्का पुनरावर्तन नहीं होता और अविद्वान्का होता है]। यह सब एतद्रूप ही है, वह सत्य है, वह आत्मा है और हे श्वेतकेतो! वही तू है। तब वह (श्वेतकेतु) उसे जान गया—उसे जान गया॥ १—३॥

॥ षष्ठ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

ॐ

सप्तम अध्याय

प्रथम खण्ड

नामकी ब्रह्मरूपमें उपासना

'भगवन्! मुझे उपदेश कीजिये' ऐसा कहते हुए नारदजी सनत्कुमारजीके पास गये। उनसे सनत्कुमारजीने कहा—'तुम जो कुछ जानते हो उसे बतलाते हुए मेरे प्रति उपसन्न होओ; तब मैं तुम्हें उससे आगे बतलाऊँगा।' तब नारदने कहा— ॥ १ ॥

'भगवन्! मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और चौथा अथर्ववेद जानता हूँ, [इनके सिवा] इतिहास-पुराणरूप पाँचवाँ वेद, वेदोंका वेद (व्याकरण), श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिशास्त्र, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या, ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, सर्पविद्या (गारुड मन्त्र) और देवजनविद्या—नृत्य-संगीत आदि—हे भगवन्! यह सब मैं जानता हूँ। हे भगवन्! वह मैं केवल मन्त्रवेत्ता ही हूँ, आत्मवेत्ता नहीं हूँ। मैंने आप-जैसोंसे सुना है कि आत्मवेत्ता शोकको पार कर लेता है, परंतु भगवन्! मैं शोक करता हूँ; ऐसे मुझको हे भगवन्! शोकसे पार कर दीजिये।' तब सनत्कुमारने उनसे कहा—'तुम यह जो कुछ जानते हो वह नाम ही है। ऋग्वेद नाम है तथा यजुर्वेद, सामवेद, चौथा आथर्वण वेद, पाँचवाँ वेद इतिहास-पुराण, वेदोंका वेद (व्याकरण), श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीतिशास्त्र, निरुक्त, वेदविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्यौतिष, गारुड, संगीतादि कला और शिल्पविद्या—ये सब भी नाम ही हैं। तुम नामकी उपासना करो। वह जो कि नामकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है, उसकी जहाँतक नामकी गति होती है वहाँतक यथेच्छ गति हो जाती है, जो कि नामकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है।' [नारद—] 'भगवन्! क्या नामसे भी अधिक कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'नामसे भी अधिक है।' [नारद—] 'तो भगवन्! मुझे वही बतलावें।'॥ २—५ ॥

द्वितीय खण्ड

वाक्‌की ब्रह्मरूपमें उपासना

वाक् ही नामसे बढ़कर है; वाक् ही ऋग्वेदको विज्ञापित करती है तथा यजुर्वेद, सामवेद, चतुर्थ आथर्वण वेद, पञ्चम वेद इतिहास-पुराण, वेदोंके वेद व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातशास्त्र, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीति, निरुक्त, वेदविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्यौतिष, गारुड, संगीतशास्त्र, द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण-वनस्पति, श्वापद (हिंस्रजन्तु), कीट-पतंग, पिपीलिकापर्यन्त प्राणी, धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य, साधु और असाधु, मनोज्ञ और अमनोज्ञ जो कुछ भी है [उसे वाक् ही विज्ञापित करती है]। यदि वाणी न होती तो न धर्मका और न अधर्मका ही ज्ञान होता; तथा न सत्य, न असत्य, न साधु, न असाधु, न मनोज्ञ और न अमनोज्ञका ही ज्ञान हो सकता। वाणी ही इन सबका ज्ञान कराती है; अतः तुम वाक्‌की उपासना करो। वह जो वाणीकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है, उसकी जहाँतक वाणीकी गति है वहाँतक स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि वाणीकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या वाणीसे भी बढ़कर कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'वाणीसे भी बढ़कर है ही।' [नारद—] 'भगवन्! वह मुझे बतलाइये'॥ १-२ ॥

तृतीय खण्ड

मनकी ब्रह्मरूपमें उपासना

मन ही वाणीसे उत्कृष्ट है। जिस प्रकार दो आँवले, दो बेर अथवा दो बहेड़े मुट्ठीमें आ जाते हैं, उसी प्रकार वाक् और नामका मनमें अन्तर्भाव हो जाता है। यह पुरुष जिस समय मनसे विचार करता है कि 'मन्त्रोंका पाठ करूँ'

तभी पाठ करता है, जिस समय सोचता है 'काम करूँ' तभी काम करता है, जब विचारता है 'पुत्र और पशुओंकी इच्छा करूँ' तभी उनकी इच्छा करता है और जब ऐसा संकल्प करता है कि 'इस लोक और परलोककी कामना करूँ' तभी उनकी कामना करता है। मन ही आत्मा है, मन ही लोक है और मन ही ब्रह्म है; तुम मनकी उपासना करो। वह जो कि मनकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है, उसकी जहाँतक मनकी गति है वहाँतक स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि मनकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या मनसे भी बढ़कर कोई है?' [सनत्कुमार—] 'मनसे बढ़कर भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मेरे प्रति उसीका उपदेश करें'॥ १-२॥

~~~ O ~~~

चतुर्थ खण्ड

संकल्पकी ब्रह्मरूपमें उपासना

संकल्प ही मनसे बढ़कर है। जिस समय पुरुष संकल्प करता है, तभी वह मनस्यन करता है और फिर वाणीको प्रेरित करता है। वह उसे नामके प्रति प्रवृत्त करता है; नाममें सब मन्त्र एकरूप हो जाते हैं और मन्त्रोंमें कर्मोंका अन्तर्भाव हो जाता है। वे ये (मन आदि) एकमात्र संकल्परूप लयस्थानवाले, संकल्पमय और संकल्पमें ही प्रतिष्ठित हैं। द्युलोक और पृथ्वीने मानो संकल्प किया है। वायु और आकाशने संकल्प किया है, जल और तेजने संकल्प किया। उनके संकल्पके लिये वृष्टि समर्थ होती है, [अर्थात् उन द्युलोकादिके संकल्पसे वृष्टि होती है] वृष्टिके संकल्पके लिये अन्न समर्थ होता है, अन्नके संकल्पके लिये प्राण समर्थ होते हैं, प्राणोंके संकल्पके लिये मन्त्र समर्थ होते हैं, मन्त्रोंके संकल्पके लिये कर्म समर्थ होते हैं, कर्मोंके संकल्पके लिये लोक (फल) समर्थ होता है और लोकोंके संकल्पके लिये सब समर्थ होते हैं। वह (ऐसा) यह संकल्प है; तुम संकल्पकी उपासना करो। वह जो कि संकल्पकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है [विधाताके] रचे हुए ध्रुवलोकोंको स्वयं ध्रुव होकर, प्रतिष्ठित लोकोंको स्वयं प्रतिष्ठित होकर तथा व्यथा न पानेवाले लोकोंको स्वयं व्यथा न पाता हुआ सब प्रकार प्राप्त करता है। जहाँतक संकल्पकी गति है वहाँतक उसकी स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि संकल्पकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या संकल्पसे भी बढ़कर कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'संकल्पसे बढ़कर भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मुझे उसीका उपदेश करें'॥ १—३॥

~~~ O ~~~

पञ्चम खण्ड

चित्तकी ब्रह्मरूपमें उपासना

चित्त ही संकल्पसे उत्कृष्ट है। जिस समय पुरुष चेतनावान् होता है तभी वह संकल्प करता है, फिर मनन करता है, तत्पश्चात् वाणीको प्रेरित करता है, उसे नाममें प्रवृत्त करता है। नाममें मन्त्र एकरूप होते हैं और मन्त्रोंमें कर्म। वे ये [संकल्पादि] एकमात्र चित्तरूप लयस्थानवाले, चित्तमय तथा चित्तमें ही प्रतिष्ठित हैं। इसीसे यद्यपि कोई मनुष्य बहुज्ञ भी हो तो भी यदि वह अचित्त होता है तो लोग कहने लगते हैं कि 'यह तो कुछ भी नहीं है, यदि यह कुछ जानता अथवा विद्वान् होता तो ऐसा अचित्त न होता।' और यदि कोई अल्पज्ञ होनेपर भी चित्तवान् हो तो उसीसे वे सब श्रवण करना चाहते हैं। अतः चित्त ही इनका एकमात्र आश्रय है, चित्त ही आत्मा है और चित्त ही प्रतिष्ठा है, तुम चित्तकी उपासना करो। वह जो कि चित्तकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है [अपने लिये] उपचित हुए ध्रुवलोकोंको स्वयं ध्रुव होकर, प्रतिष्ठित लोकोंको स्वयं प्रतिष्ठित होकर तथा व्यथा न पानेवाले लोकोंको स्वयं व्यथा न पाता हुआ सब प्रकार प्राप्त करता है। जहाँतक चित्तकी गति है वहाँतक उसकी स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि चित्तकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या चित्तसे बढ़कर भी कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'चित्तसे बढ़कर भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मुझे उसीका उपदेश करें'॥ १—३॥

~~~ O ~~~
~~~

षष्ठ खण्ड

ध्यानकी ब्रह्मरूपमें उपासना

ध्यान ही चित्तसे बढ़कर है। पृथ्वी मानो ध्यान करती है, अन्तरिक्ष मानो ध्यान करता है, द्युलोक मानो ध्यान करता है, जल मानो ध्यान करते हैं, पर्वत मानो ध्यान करते हैं तथा देवता और मनुष्य भी मानो ध्यान करते हैं। अतः जो लोग यहाँ मनुष्योंमें महत्त्व प्राप्त करते हैं वे मानो ध्यानके लाभका ही अंश पाते हैं; किंतु जो क्षुद्र होते हैं वे कलहप्रिय, चुगलखोर और दूसरोंके मुँहपर ही उनकी निन्दा करनेवाले होते हैं तथा जो सामर्थ्यवान् हैं वे भी ध्यानके लाभका ही अंश प्राप्त करनेवाले हैं। अतः तुम ध्यानकी उपासना करो। वह जो कि ध्यानकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है, जहाँतक ध्यानकी गति है वहाँतक उसकी स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि ध्यानकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या ध्यानसे भी उत्कृष्ट कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'ध्यानसे भी उत्कृष्ट है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मुझे उसीका उपदेश करें'॥ १-२॥

सप्तम खण्ड

विज्ञानकी ब्रह्मरूपमें उपासना

विज्ञान ही ध्यानसे श्रेष्ठ है। विज्ञानसे ही पुरुष ऋग्वेद समझता है तथा विज्ञानसे ही वह यजुर्वेद, सामवेद, चौथे आथर्वण वेद, वेदोंमें पाँचवें वेद इतिहास-पुराण, व्याकरण, श्राद्धकल्प, गणित, उत्पातज्ञान, निधिज्ञान, तर्कशास्त्र, नीति, देवविद्या (निरुक्त), ब्रह्मविद्या, भूतविद्या, धनुर्वेद, ज्यौतिष, गारुड और शिल्पविद्या, द्युलोक, पृथिवी, वायु, आकाश, जल, तेज, देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, श्वापद, कीट-पतंग-पिपीलिकापर्यन्त सम्पूर्ण जीव, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य, साधु, असाधु, मनोज्ञ, अमनोज्ञ, अन्न, रस तथा इहलोक और परलोकको जानता है। तुम विज्ञानकी उपासना करो। वह जो कि विज्ञानकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसे विज्ञानवान् एवं ज्ञानवान् लोकोंकी प्राप्ति होती है। जहाँतक विज्ञानकी गति है वहाँतक उसकी स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि विज्ञानकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या विज्ञानसे भी श्रेष्ठ कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'विज्ञानसे श्रेष्ठ भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मुझे वही बतलावें'॥ १-२॥

अष्टम खण्ड

बलकी ब्रह्मरूपमें उपासना

बल ही विज्ञानकी अपेक्षा उत्कृष्ट है। सौ विज्ञानवानोंको भी एक बलवान् हिला देता है। जिस समय यह पुरुष बलवान् होता है तभी उठनेवाला भी होता है, उठकर [अर्थात् उठनेवाला होनेपर] ही परिचर्या करनेवाला होता है तथा परिचर्या करनेवाला होनेपर ही उपसदन (समीप गमन) करनेवाला होता है और उपसदन करनेपर ही दर्शन करनेवाला होता है, श्रवण करनेवाला होता है, मनन करनेवाला होता है, बोधवान् होता है, कर्ता होता है एवं विज्ञाता होता है। बलसे ही पृथ्वी स्थित है; बलसे ही अन्तरिक्ष, बलसे ही द्युलोक, बलसे ही पर्वत, बलसे ही देवता और मनुष्य, बलसे ही पशु, पक्षी, तृण, वनस्पति, श्वापद और कीट-पतंग एवं पिपीलिकापर्यन्त समस्त प्राणी स्थित हैं तथा बलसे ही लोक स्थित है। तुम बलकी उपासना करो। वह जो कि बलकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसकी, जहाँतक बलकी गति है, स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि बलकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या बलसे भी उत्कृष्ट कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'बलसे उत्कृष्ट भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मेरे प्रति उसीका वर्णन करें'॥ १-२॥

नवम खण्ड

अन्नकी ब्रह्मरूपमें उपासना

अन्न ही बलसे उत्कृष्ट है। इसीसे यदि दस दिन भोजन न करे और जीवित भी रह जाय तो भी वह अद्रष्टा, अश्रोता, अमन्ता, अबोद्धा, अकर्ता और अविज्ञाता हो ही जाता है। फिर अन्नकी प्राप्ति होनेपर ही वह द्रष्टा होता है, श्रोता होता है, मनन करनेवाला होता है, बोद्धा होता है, कर्ता होता है और विज्ञाता होता है। तुम अन्नकी उपासना करो। वह जो कि अन्नकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है उसे अन्नवान् और पानवान् लोकोंकी प्राप्ति होती है। जहाँतक अन्नकी गति है वहाँतक उसकी स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि अन्नकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या अन्नसे बढ़कर भी कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'अन्नसे बढ़कर भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मुझे उसीका उपदेश करें'॥ १-२॥

दशम खण्ड

जलकी ब्रह्मरूपमें उपासना

जल ही अन्नकी अपेक्षा उत्कृष्ट है। इसीसे जब सुवृष्टि नहीं होती तो प्राण [इसलिये] दुःखी हो जाते हैं कि अन्न थोड़ा होगा और जब सुवृष्टि होती है तो यह सोचकर कि खूब अन्न होगा, प्राण प्रसन्न हो जाते हैं। यह जो पृथ्वी है मूर्तिमान् जल ही है तथा जो अन्तरिक्ष, जो द्युलोक, जो पर्वत, जो देव-मनुष्य, जो पशु और पक्षी तथा जो तृण, वनस्पति, श्वापद और कीट-पतंग-पिपीलिकापर्यन्त प्राणी हैं वे भी मूर्तिमान् जल ही हैं। अतः तुम जलकी उपासना करो। वह जो कि जलकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है, सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और तृप्तिमान् होता है। जहाँतक जलकी गति है वहाँतक उसकी स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि जलकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या जलसे भी श्रेष्ठ कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'जलसे श्रेष्ठ भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मुझे उसीका उपदेश करें'॥ १-२॥

एकादश खण्ड

तेजकी ब्रह्मरूपमें उपासना

तेज ही जलकी अपेक्षा उत्कृष्टतर है। वह यह तेज जिस समय वायुको निश्चल कर आकाशको सब ओरसे तप्त करता है उस समय लोग कहते हैं—'गर्मी हो रही है, बड़ा ताप है, वर्षा होगी।' इस प्रकार तेज ही पहले अपनेको उद्भूत हुआ दिखलाकर फिर जलकी उत्पत्ति करता है। वह यह तेज ऊर्ध्वगामी और तिर्यक्-गामी विद्युत्के सहित गड़गड़ाहटका शब्द फैला देता है। इसीसे लोग कहते हैं—'बिजली चमकती है, बादल गर्जता है, वर्षा होगी।' इस प्रकार तेज ही पहले अपनेको प्रदर्शित कर फिर जलको उत्पन्न करता है। अतः तेजकी उपासना करो। वह जो कि तेजकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है वह तेजस्वी होकर तेजःसम्पन्न, प्रकाशमान और तमोहीन लोकोंको प्राप्त करता है। जहाँतक तेजकी गति है वहाँतक उसकी स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि तेजकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या तेजसे भी बढ़कर कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'तेजसे बढ़कर भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मुझे उसीका उपदेश करें'॥ १-२॥

द्वादश खण्ड

आकाशकी ब्रह्मरूपमें उपासना

आकाश ही तेजसे बढ़कर है। आकाशमें ही सूर्य, चन्द्र ये दोनों तथा विद्युत्, नक्षत्र और अग्नि स्थित हैं। आकाशके द्वारा ही एक-दूसरेको पुकारते हैं, आकाशसे ही सुनते हैं, आकाशसे ही प्रतिश्रवण करते हैं, आकाशमें ही रमण करते हैं, आकाशमें ही रमण नहीं करते, आकाशमें ही [सब पदार्थ] उत्पन्न होते हैं और आकाशकी ओर ही [सब जीव एवं अङ्कुरादि] बढ़ते हैं। तुम आकाशकी उपासना करो। वह जो कि आकाशकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है वह आकाशवान्, प्रकाशवान्, पीडारहित और विस्तारवाले लोकोंको प्राप्त करता है। जहाँतक आकाशकी गति है वहाँतक उसकी स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि आकाशकी 'यह ब्रह्म है' ऐसी उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या आकाशसे बढ़कर भी कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'आकाशसे बढ़कर भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मुझे उसीका उपदेश करें'॥ १-२॥

त्रयोदश खण्ड

स्मरणकी ब्रह्मरूपमें उपासना

स्मर (स्मरण) ही आकाशसे बढ़कर है। इसीसे यद्यपि बहुत-से लोग [एक स्थानपर] बैठे हों तो भी स्मरण न करनेपर वे न कुछ सुन सकते हैं, न मनन कर सकते हैं और न जान ही सकते हैं। जिस समय वे स्मरण करते हैं, उसी समय सुन सकते हैं, उसी समय मनन कर सकते हैं और उसी समय जान सकते हैं। स्मरण करनेसे ही पुरुष पुत्रोंको पहचानता है और स्मरणसे ही पशुओंको। तुम स्मरकी उपासना करो। वह जो कि स्मरकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है, उसकी जहाँतक स्मरकी गति है, वहाँतक स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि स्मरकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है, [नारद—] 'भगवन्! क्या स्मरसे भी श्रेष्ठ कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'स्मरसे भी श्रेष्ठ है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मेरे प्रति उसका वर्णन करें।'॥ १-२॥

चतुर्दश खण्ड

आशाकी ब्रह्मरूपसे उपासना

आशा ही स्मरणकी अपेक्षा उत्कृष्ट है। आशासे दीप्त हुआ स्मरण ही मन्त्रोंका पाठ करता है, कर्म करता है, पुत्र और पशुओंकी इच्छा करता है तथा इस लोक और परलोककी कामना करता है। तुम आशाकी उपासना करो। वह जो कि आशाकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है, उसकी सब कामनाएँ आशासे समृद्ध होती हैं। उसकी प्रार्थनाएँ सफल होती हैं। जहाँतक आशाकी गति है, वहाँतक उसकी स्वेच्छागति हो जाती है, जो कि आशाकी 'यह ब्रह्म है' इस प्रकार उपासना करता है। [नारद—] 'भगवन्! क्या आशासे बढ़कर भी कुछ है?' [सनत्कुमार—] 'आशासे बढ़कर भी है ही।' [नारद—] 'भगवन्! मुझे वह बतलावें'॥ १-२॥

पञ्चदश खण्ड

प्राणकी ब्रह्मरूपसे उपासना

प्राण ही आशासे बढ़कर है। जिस प्रकार रथचक्रकी नाभिमें अरे समर्पित रहते हैं, उसी प्रकार इस प्राणमें सारा जगत् समर्पित है। प्राण प्राण (अपनी शक्ति)-के द्वारा गमन करता है; प्राण प्राणको देता है और प्राणके

लिये ही देता है। प्राण ही पिता है, प्राण माता है, प्राण भाई है, प्राण बहिन है, प्राण आचार्य है और प्राण ही ब्राह्मण है। यदि कोई पुरुष अपने पिता, माता, भ्राता, भगिनी, आचार्य अथवा ब्राह्मणके लिये कोई अनुचित बात कहता है तो [उसके समीपवर्ती लोग] उससे कहते हैं—'तुझे धिक्कार है, तू निश्चय ही पिताका हनन करनेवाला है, तू तो माताका वध करनेवाला है, तू तो भाईको मारनेवाला है, तू तो बहिनकी हत्या करनेवाला है, तू तो आचार्यका घात करनेवाला है, तू निश्चय ही ब्रह्मघाती है। किंतु जिनके प्राण उत्क्रमण कर गये हैं, उन पिता आदि [के प्राणहीन शरीर]-को यदि वह शूलसे एकत्रित और छिन्न-भिन्न करके जला दे तो भी उससे 'तू पिताकी हत्या करनेवाला है', 'तू माताकी हत्या करनेवाला है', 'तू भ्राताकी हत्या करनेवाला है', 'तू बहिनकी हत्या करनेवाला है', 'तू आचार्यका घात करनेवाला है' अथवा 'तू ब्रह्मघाती है' ऐसा कुछ नहीं कहते। प्राण ही ये सब [पिता आदि] हैं। वह जो इस प्रकार देखनेवाला, इस प्रकार चिन्तन करनेवाला और इस प्रकार जाननेवाला है, अतिवादी होता है। उससे यदि कोई कहे कि 'तू अतिवादी है' तो उसे यही कहना चाहिये कि 'हाँ, अतिवादी हूँ' उसे छिपाना नहीं चाहिये॥ १—४॥

षोडश खण्ड

सत्य ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य है

[सनत्कुमार—] 'जो सत्य (परमार्थ सत्य आत्माके विज्ञान)-के कारण अतिवदन करता है, वही निश्चय अतिवदन करता है।' [नारद—] 'भगवन्! मैं तो परमार्थ सत्य विज्ञानके कारण ही अति वदन करता हूँ।' [सनत्कुमार—] 'सत्यकी ही तो विशेषरूपसे जिज्ञासा करनी चाहिये।' [नारद—] 'भगवन्! मैं विशेषरूपसे सत्यकी जिज्ञासा करता हूँ'॥ १॥

सप्तदश खण्ड

विज्ञान ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य है

[सनत्कुमार—] 'जिस समय पुरुष सत्यको विशेषरूपसे जानता है, तभी वह सत्य बोलता है, बिना जाने सत्य नहीं बोलता; अपितु विशेषरूपसे जानने-वाला ही सत्यका कथन करता है। अतः विज्ञानकी ही विशेषरूपसे जिज्ञासा करनी चाहिये।' [नारद—] 'भगवन्! मैं विज्ञानको विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ'॥ १॥

अष्टादश खण्ड

मति ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य है

[सनत्कुमार—] 'जिस समय मनुष्य मनन करता है, तभी वह विशेषरूपसे जानता है; बिना मनन किये कोई नहीं जानता, अपितु मनन करनेपर ही जानता है। अतः मतिकी ही विशेषरूपसे जिज्ञासा करनी चाहिये।' (नारद—) 'भगवन्! मैं मतिके विज्ञानकी इच्छा करता हूँ'॥ १॥

एकोनविंश खण्ड

श्रद्धा ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य है

[सनत्कुमार—] 'जिस समय मनुष्य श्रद्धा करता है, तभी वह मनन करता है; बिना श्रद्धा किये कोई मनन नहीं करता, अपितु श्रद्धा करनेवाला ही मनन करता है। अतः श्रद्धाकी ही विशेषरूपसे जिज्ञासा करनी चाहिये।' [नारद—] 'भगवन्! मैं श्रद्धाके विज्ञानकी इच्छा करता हूँ'॥ १॥

विंश खण्ड

निष्ठा ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य है

[सनत्कुमार] 'जिस समय पुरुषकी निष्ठा होती है, तभी वह श्रद्धा करता है; बिना निष्ठाके कोई श्रद्धा नहीं करता, अपितु निष्ठा करनेवाला ही श्रद्धा करता है। अतः निष्ठाको ही विशेषरूपसे जाननेकी इच्छा करनी चाहिये।' [नारद—] 'भगवन्! मैं निष्ठाको विशेषरूपसे जानना चाहता हूँ'॥ १॥

एकविंश खण्ड

कृति ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य है

[सनत्कुमार—] 'जिस समय मनुष्य करता है उस समय वह निष्ठा भी करने लगता है; बिना किये किसीकी निष्ठा नहीं होती, पुरुष करनेपर ही निष्ठावान् होता है। अतः कृतिकी ही विशेषरूपसे जिज्ञासा करनी चाहिये।' [नारद—] 'भगवन्! मैं कृतिकी विशेषरूपसे जिज्ञासा करता हूँ'॥ १॥

द्वाविंश खण्ड

सुख ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य है

[सनत्कुमार—] 'जब मनुष्यको सुख प्राप्त होता है, तभी वह करता है; बिना सुख मिले कोई नहीं करता, अपितु सुख मिलनेपर ही करता है; अतः सुखकी ही विशेषरूपसे जिज्ञासा करनी चाहिये।' [नारद—] 'भगवन्! मैं सुखकी विशेषरूपसे जिज्ञासा करता हूँ'॥ १॥

त्रयोविंश खण्ड

भूमा ही विशेषरूपसे जिज्ञास्य है

[सनत्कुमार—] 'निश्चय जो भूमा है, वही सुख है, अल्पमें सुख नहीं है। सुख भूमा ही है। भूमाकी ही विशेषरूपसे जिज्ञासा करनी चाहिये।' [नारद—] 'भगवन्! मैं भूमाकी विशेषरूपसे जिज्ञासा करता हूँ।'

चतुर्विंश खण्ड

भूमा ही अमृत है

[सनत्कुमार—] 'जहाँ कुछ और नहीं देखता, कुछ और नहीं सुनता तथा कुछ और नहीं जानता, वह भूमा है। किंतु जहाँ कुछ और देखता है, कुछ और सुनता है एवं कुछ और जानता है, वह अल्प है। जो भूमा है, वही अमृत है और जो अल्प है, वह मर्त्य है।' [नारद—] 'भगवन्! वह (भूमा) किसमें प्रतिष्ठित है?' [सनत्कुमार—] 'अपनी महिमामें अथवा अपनी महिमामें भी नहीं है। इस लोकमें गौ, अश्व आदिको महिमा कहते हैं तथा हाथी, सुवर्ण, दास, भार्या, क्षेत्र और घर इनका नाम भी महिमा है; किन्तु मेरा ऐसा कथन नहीं है; क्योंकि अन्य पदार्थ अन्यमें प्रतिष्ठित होता है। मैं तो यह कहता हूँ'—ऐसा सनत्कुमारजीने कहा॥ १-२॥

पञ्चविंश खण्ड

भूमा ही सर्वत्र सब कुछ और आत्मा है

वही नीचे है, वही ऊपर है, वही पीछे है, वही आगे है, वही दायीं ओर है, वही बायीं ओर है और वही यह सब है। अब उसीमें अहङ्कारादेश किया जाता है—मैं ही नीचे हूँ, मैं ही ऊपर हूँ, मैं ही पीछे हूँ, मैं ही आगे हूँ, मैं ही दायीं ओर हूँ, मैं ही बायीं ओर हूँ और मैं ही यह सब हूँ॥ १॥

अब आत्मरूपसे ही भूमाका आदेश किया जाता है। आत्मा ही नीचे है, आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दायीं ओर है, आत्मा ही बायीं ओर है और आत्मा ही यह सब है। वह यह इस प्रकार देखनेवाला, इस प्रकार मनन करनेवाला तथा विशेषरूपसे इस प्रकार जाननेवाला आत्मरति, आत्मक्रीड, आत्ममिथुन और आत्मानन्द होता है; वह स्वराट् है; सम्पूर्ण लोकोंमें उसकी यथेच्छ गति होती है। किंतु जो इससे विपरीत जानते हैं वे अन्यराट् (जिनका राजा अपनेसे भिन्न कोई और है, ऐसे) और क्षय्यलोक (क्षयशील लोकोंको प्राप्त होनेवाले) होते हैं। उनकी सम्पूर्ण लोकोंमें स्वेच्छागति नहीं होती॥ २॥

षड्विंश खण्ड

आत्मदर्शनसे सबकी प्राप्ति; आहारशुद्धिसे क्रमशः अविद्याकी निवृत्ति

उस इस प्रकार देखनेवाले, इस प्रकार मनन करनेवाले और इस प्रकार जाननेवाले इस विद्वान्के लिये आत्मासे प्राण, आत्मासे आशा, आत्मासे स्मृति, आत्मासे आकाश, आत्मासे तेज, आत्मासे जल, आत्मासे आविर्भाव और तिरोभाव, आत्मासे अन्न, आत्मासे बल, आत्मासे विज्ञान, आत्मासे ध्यान, आत्मासे चित्त, आत्मासे संकल्प, आत्मासे मन, आत्मासे वाक्, आत्मासे नाम, आत्मासे मन्त्र, आत्मासे कर्म और आत्मासे ही यह सब हो जाता है॥ १॥

इस विषयमें यह मन्त्र है—विद्वान् न तो मृत्युको देखता है, न रोगको और न दुःखत्वको ही। वह विद्वान् सबको [आत्मरूप ही] देखता है, अतः सबको प्राप्त हो जाता है। वह एक होता है। फिर वही तीन, पाँच, सात और नौ रूप हो जाता है। फिर वही ग्यारह कहा गया है तथा वही सौ, दस, एक सहस्र और बीस भी होता है। आहारशुद्धि (विषयोपलब्धिरूप विज्ञानकी शुद्धि) होनेपर अन्तःकरणकी शुद्धि होती है; अन्तःकरणकी शुद्धि होनेपर निश्चल स्मृति होती है तथा स्मृतिकी प्राप्ति होनेपर सम्पूर्ण ग्रन्थियोंकी निवृत्ति हो जाती है। [इस प्रकार] जिनकी वासनाएँ क्षीण हो गयी थीं, उन (नारदजी)-को भगवान् सनत्कुमारने अज्ञानान्धकारका पार दिखलाया। उन (सनत्कुमारजी)-को 'स्कन्द' ऐसा कहते हैं, 'स्कन्द' ऐसा कहते हैं॥ २॥

॥ सप्तम अध्याय समाप्त॥ ७॥

सत्यकी जय है

सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥

(मुण्डक० ३।१।६)

सत्यकी ही जय होती है, असत्यकी नहीं, वह देवयानमार्ग सत्यसे ही व्याप्त है, जिससे पूर्णकाम ऋषिगण गमन करते हैं, जहाँ उस सत्यस्वरूप परमात्माका परमधाम है।

ॐ

अष्टम अध्याय

प्रथम खण्ड

आत्मा ही सत्य है

अब इस ब्रह्मपुरके भीतर और जो यह सूक्ष्म कमलाकार स्थान है, इसमें जो सूक्ष्म आकाश है और उसके भीतर जो वस्तु है, उसका अन्वेषण करना चाहिये और उसीकी जिज्ञासा करनी चाहिये। उस (गुरु)-से यदि [शिष्यगण] कहें कि इस ब्रह्मपुरमें जो सूक्ष्म कमलाकार गृह है, उसमें जो अन्तराकाश है, उसके भीतर क्या वस्तु है, जिसका अन्वेषण करना चाहिये अथवा जिसकी जिज्ञासा करनी चाहिये?—तो [इस प्रकार कहनेवाले शिष्योंके प्रति] वह आचार्य यों कहें॥ १-२॥

जितना यह [भौतिक] आकाश है, उतना ही हृदयान्तर्गत आकाश है। द्युलोक और पृथिवी ये दोनों लोक सम्यक् प्रकारसे इसके भीतर ही स्थित हैं। इसी प्रकार अग्नि और वायु—ये दोनों, सूर्य और चन्द्रमा—ये दोनों तथा विद्युत् और नक्षत्र एवं इस आत्माका जो कुछ इस लोकमें है और जो नहीं है, वह सब सम्यक् प्रकारसे इसीमें स्थित है॥ ३॥

उस आचार्यसे यदि शिष्यगण कहें कि यदि इस ब्रह्मपुरमें यह सब समाहित है तथा सम्पूर्ण भूत और समस्त कामनाएँ भी सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं तो जिस समय यह वृद्धावस्थाको प्राप्त होता अथवा नष्ट हो जाता है, उस समय क्या शेष रह जाता है? तो उसे कहना चाहिये 'इस (देह)-की जरावस्थासे यह (आकाशाख्य ब्रह्म) जीर्ण नहीं होता। इसके वधसे उसका नाश नहीं होता। यह ब्रह्मपुर सत्य है; इसमें [सम्पूर्ण] कामनाएँ सम्यक् प्रकारसे स्थित हैं; यह आत्मा है, धर्माधर्मसे शून्य है तथा जराहीन, मृत्युहीन, शोकरहित, भोजनेच्छारहित, पिपासाशून्य, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है; जिस प्रकार इस लोकमें प्रजा राजाकी आज्ञाका अनुवर्तन करती है तो वह जिस-जिस सन्निहित वस्तुकी कामना करती है तथा जिस-जिस देश या भूभागकी इच्छा करती है, उसी-उसीके आश्रित जीवन धारण करती है। जिस प्रकार यहाँ कर्मसे प्राप्त किया हुआ लोक क्षीण हो जाता है, उसी प्रकार परलोकमें पुण्योपार्जित लोक क्षीण हो जाता है। जो लोग इस लोकमें आत्माको और इन सत्य कामनाओंको बिना जाने ही परलोकगामी होते हैं, उनकी सम्पूर्ण लोकोंमें यथेच्छगति नहीं होती। परंतु जो इस लोकमें आत्माको तथा सत्य कामनाओंको जानकर [परलोकमें] जाते हैं, उनकी समस्त लोकोंमें यथेच्छगति होती है'॥ ४—६॥

द्वितीय खण्ड

आत्मज्ञानीकी सङ्कल्पसिद्धि

वह यदि पितृलोककी कामनावाला होता है तो उसके संकल्पसे ही पितृगण वहाँ उपस्थित होते हैं [अर्थात् उसके आत्मसम्बन्धी हो जाते हैं,] उस पितृलोकसे सम्पन्न होकर वह महिमान्वित होता है और यदि वह मातृलोककी कामनावाला होता है तो उसके संकल्पसे ही माताएँ वहाँ उपस्थित हो जाती हैं। उस मातृलोकसे सम्पन्न हो वह महिमाको प्राप्त होता है और यदि वह भ्रातृलोककी कामनावाला होता है तो उसके संकल्पसे ही भ्रातृगण वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। उस भ्रातृलोकसे सम्पन्न हो वह महिमाको प्राप्त होता है और यदि वह भगिनीलोककी कामनावाला होता है तो उसके संकल्पसे ही बहनें वहाँ उपस्थित हो जाती हैं। उस भगिनीलोकसे सम्पन्न हो वह महिमाको प्राप्त होता है और यदि वह सखाओंके लोककी कामनावाला होता है तो उसके संकल्पसे ही सखा लोग वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। उन सखाओंके लोकसे सम्पन्न हो वह महिमाको प्राप्त होता है और यदि वह गन्धमाल्यलोककी कामनावाला होता है तो उसके

संकल्पसे ही गन्धमाल्यादि वहाँ उपस्थित हो जाते हैं। उस गन्धमाल्यलोकसे सम्पन्न हो वह महिमाको प्राप्त होता है और यदि वह अन्न-पानसम्बन्धी लोककी कामनावाला होता है तो उसके संकल्पसे ही अन्न-पान उसके पास उपस्थित हो जाते हैं। उस अन्न-पान-लोकसे सम्पन्न हो वह महिमाको प्राप्त होता है और यदि वह गीत-वाद्यसम्बन्धी लोककी कामनावाला होता है तो उसके संकल्पसे ही गीत-वाद्य वहाँ प्राप्त हो जाते हैं। उस गीत-वाद्यलोकसे सम्पन्न हो वह महिमाको प्राप्त होता है और यदि वह स्त्री-लोककी कामनावाला होता है तो उसके संकल्पमात्रसे ही स्त्रियाँ उसके पास उपस्थित हो जाती हैं। उस स्त्री-लोकसे सम्पन्न हो वह महिमान्वित होता है। वह जिस-जिस प्रदेशकी कामना करनेवाला होता है और जिस-जिस भोगकी इच्छा करता है वह सब उसके संकल्पसे ही उसको प्राप्त हो जाता है। उससे सम्पन्न हो वह महिमाको प्राप्त होता है॥ १—१०॥

तृतीय खण्ड

ब्रह्मकी प्राप्तिसे सबकी प्राप्ति, ब्रह्म हृदयमें ही है

वे ये सत्यकाम अनृतके आच्छादनसे युक्त हैं। सत्य होनेपर भी अनृत उनका अपिधान (आच्छादन करनेवाला) है, क्योंकि इस प्राणीका जो-जो [सम्बन्धी] यहाँसे मरकर जाता है, वह-वह उसे फिर देखनेके लिये नहीं मिलता तथा इस लोकमें अपने जिन जीवित अथवा जिन मृतक [पुत्रादि]-को और जिन अन्य पदार्थोंको यह इच्छा करते हुए भी प्राप्त नहीं करता, उन सबको यह इस (हृदयाकाशस्थित ब्रह्म)-में जाकर प्राप्त कर लेता है; क्योंकि यहाँ इसके ये सत्यकाम अनृतसे ढके हुए रहते हैं। इस विषयमें यह दृष्टान्त है—जिस प्रकार पृथिवीमें गड़े हुए सुवर्णके खजानेको उस स्थानसे अनभिज्ञ पुरुष ऊपर-ऊपर विचरते हुए भी नहीं जानते, इसी प्रकार यह सारी प्रजा नित्यप्रति ब्रह्मलोकको जाती हुई उसे नहीं पाती; क्योंकि यह अनृतके द्वारा हर ली गयी है॥ १-२॥

वह यह आत्मा हृदयमें है। '**हृदि अयम्**' (यह हृदयमें है) यही इसका निरुक्त (व्युत्पत्ति) है। इसीसे यह 'हृदय' है। इस प्रकार जाननेवाला पुरुष प्रतिदिन स्वर्गलोकको जाता है॥ ३॥

यह जो सम्प्रसाद है, वह इस शरीरसे उत्थान कर परम ज्योतिको प्राप्त हो अपने स्वरूपसे युक्त हो जाता है। यह आत्मा है, यही अमृत एवं अभय है और यही ब्रह्म है—ऐसा आचार्यने कहा। उस इस ब्रह्मका 'सत्य' यह नाम है॥ ४॥

वे ये 'सकार' 'तकार' और 'यम्' तीन अक्षर हैं। उनमें जो 'सकार' है, वह अमृत है, जो 'तकार' है, वह मर्त्य है और जो 'यम्' है, उससे वह दोनोंका नियमन करता है; क्योंकि इससे वह उन दोनोंका नियमन करता है; इसलिये 'यम्' इस प्रकार जाननेवाला प्रतिदिन ही स्वर्गलोकको जाता है॥ ५॥

चतुर्थ खण्ड

आत्माकी महिमा और ब्रह्मचर्यसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति

जो आत्मा है, वह इन लोकोंके असम्भेद (पारस्परिक असंघर्ष)-के लिये इन्हें विशेषरूपसे धारण करनेवाला सेतु है। इस सेतुका दिन-रात अतिक्रमण नहीं करते। इसे न जरा, न मृत्यु, न शोक और न सुकृत या दुष्कृत ही प्राप्त हो सकते हैं। सम्पूर्ण पाप इससे निवृत्त हो जाते हैं; क्योंकि यह ब्रह्मलोक पापशून्य है। इसलिये इस सेतुको तरकर पुरुष अन्धा होनेपर भी अन्धा नहीं होता, विद्ध होनेपर भी अविद्ध होता है, उपतापी होनेपर भी अनुपतापी होता है, इसीसे इस सेतुको तरकर अन्धकाररूप रात्रि भी दिन ही हो जाती है; क्योंकि यह ब्रह्मलोक सर्वदा प्रकाशस्वरूप है। ऐसा होनेके कारण जो इस ब्रह्मलोकको ब्रह्मचर्यके द्वारा [शास्त्र एवं आचार्यके उपदेशके अनुसार] जानते हैं, उन्हींको यह ब्रह्मलोक प्राप्त होता है तथा उनकी सम्पूर्ण लोकोंमें यथेच्छगति हो जाती है॥ १—३॥

पञ्चम खण्ड

ब्रह्मचर्यकी महिमा

अब [लोकमें] जिसे 'यज्ञ' (परम पुरुषार्थका साधन) कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि जो ज्ञाता है वह ब्रह्मचर्यके द्वारा ही उस (ब्रह्मलोक)-को प्राप्त होता है और जिसे 'इष्ट' ऐसा कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्यके द्वारा पूजन करके ही पुरुष आत्माको प्राप्त होता है तथा जिसे 'सत्त्रायण' ऐसा कहा जाता है वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि ब्रह्मचर्यके द्वारा ही सत्—परमात्मासे अपना त्राण प्राप्त करता है। इसके सिवा जिसे 'मौन' ऐसा कहा जाता है वह भी ब्रह्मचर्य ही है; क्योंकि ब्रह्मचर्यके द्वारा ही आत्माको जानकर पुरुष मनन करता है तथा जिसे अनाशकायन (नष्ट न होना) कहा जाता है वह भी ब्रह्मचर्य ही है, क्योंकि जिसे [साधक] ब्रह्मचर्यके द्वारा प्राप्त होता है वह यह आत्मा नष्ट नहीं होता और जिसे अरण्यायन ऐसा कहा जाता है वह भी ब्रह्मचर्य ही है; क्योंकि इस ब्रह्मलोकमें 'अर' और 'ण्य' ये दो समुद्र हैं, यहाँसे तीसरे द्युलोकमें ऐरंमदीय सरोवर है, सोमसवन नामका अश्वत्थ है, वहाँ ब्रह्माकी अपराजिता पुरी है और प्रभुका विशेषरूपसे निर्माण किया हुआ सुवर्णमय मण्डप है। उस ब्रह्मलोकमें जो लोग ब्रह्मचर्यके द्वारा इन 'अर' और 'ण्य' दोनों समुद्रोंको प्राप्त करते हैं उन्हींको इस ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। उनकी सम्पूर्ण लोकोंमें यथेच्छगति हो जाती है॥ १—४॥

षष्ठ खण्ड

हृदयगत नाडियाँ ही उत्क्रमणका मार्ग हैं

अब ये जो हृदयकी नाडियाँ हैं वे पिंगलवर्ण सूक्ष्म रसकी हैं। वे शुक्ल, नील, पीत और लोहित रसकी हैं; क्योंकि यह आदित्य पिंगलवर्ण है, यह शुक्ल है, यह नील है, यह पीत है और यह लोहितवर्ण है। इस विषयमें यह दृष्टान्त है कि जिस प्रकार कोई विस्तीर्ण महापथ इस (समीपवर्ती) और उस (दूरवर्ती) दोनों गाँवोंको जाता है, उसी प्रकार ये सूर्यकी किरणें इस पुरुषमें और उस आदित्यमण्डलमें दोनों लोकोंमें प्रविष्ट हैं। वे निरन्तर इस आदित्यसे ही निकली हैं और इन नाडियोंमें व्याप्त हैं तथा जो इन नाडियोंसे निकलती हैं वे इस आदित्यमें व्याप्त हैं। ऐसी अवस्थामें जिस समय यह सोया हुआ—भली प्रकार लीन हुआ पुरुष सम्यक् प्रकारसे प्रसन्न होकर स्वप्न नहीं देखता, उस समय यह इन नाडियोंमें चला जाता है, तब इसे कोई पाप स्पर्श नहीं करता और यह तेजसे व्याप्त हो जाता है॥ १—३॥

अब जिस समय यह जीव शरीरकी दुर्बलताको प्राप्त होता है, उस समय उसके चारों ओर बैठे हुए [बन्धुजन] कहते हैं—'क्या तुम मुझे जानते हो? क्या तुम मुझे जानते हो?' वह जबतक इस शरीरसे उत्क्रमण नहीं करता, तबतक उन्हें जानता है। फिर जिस समय यह इस शरीरसे उत्क्रमण करता है, उस समय इन किरणोंसे ही ऊपरकी ओर चढ़ता है। वह 'ॐ' ऐसा [कहकर आत्माका ध्यान करता हुआ] ऊर्ध्वलोक अथवा अधोलोकको जाता है। वह जितनी देरमें मन जाता है, उतनी ही देरमें आदित्यलोकमें पहुँच जाता है। यह [आदित्य] निश्चय ही लोकद्वार है। यह विद्वानोंके लिये ब्रह्मलोकप्राप्तिका द्वार है और अविद्वानोंका निरोधस्थान है। इस विषयमें यह मन्त्र है—हृदयकी एक सौ एक नाडियाँ हैं। उनमेंसे एक मस्तककी ओर निकल गयी है। उसके द्वारा ऊपरकी ओर जानेवाला जीव अमरत्वको प्राप्त होता है; शेष इधर-उधर जानेवाली नाडियाँ केवल उत्क्रमणका कारण होती हैं, उत्क्रमणका कारण होती हैं [उनसे अमरत्वकी प्राप्ति नहीं होती]॥ ४—६॥

सप्तम खण्ड

इन्द्र और विरोचनको प्रजापतिका उपदेश

जो आत्मा पापशून्य, जरारहित, मृत्युरहित, शोकरहित, क्षुधारहित, पिपासारहित, सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प है, [इन आठ स्वरूपभूत गुणोंसे युक्त है] उसे खोजना चाहिये और उसे विशेषरूपसे जाननेकी इच्छा करनी चाहिये। जो उस आत्माको शास्त्र और गुरुके उपदेशानुसार खोजकर जान लेता है, वह सम्पूर्ण लोक और समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है—ऐसा प्रजापतिने कहा। प्रजापतिके इस वाक्यको देवता और असुर दोनोंने ही परम्परासे जान लिया। वे कहने लगे—'हम उस आत्माको जानना चाहते हैं, जिसे जाननेपर जीव सम्पूर्ण लोकों और समस्त भोगोंको प्राप्त कर लेता है'—ऐसा निश्चयकर देवताओंका राजा इन्द्र और असुरोंका राजा विरोचन—ये दोनों परस्पर ईर्ष्या करते हुए हाथोंमें समिधाएँ लेकर प्रजापतिके पास आये। उन्होंने बत्तीस वर्षतक ब्रह्मचर्यवास किया। तब उनसे प्रजापतिने कहा—'तुम यहाँ किस इच्छासे रहे हो?' उन्होंने कहा—'जो आत्मा पापरहित, जरारहित, मृत्युरहित, शोकरहित, क्षुधाहीन, तृषाहीन, सत्यकाम और सत्यसंकल्प है, उसका अन्वेषण करना चाहिये और उसे विशेषरूपसे जाननेकी इच्छा करनी चाहिये। जो उस आत्माका अन्वेषण कर उसे विशेषरूपसे जान लेता है, वह सम्पूर्ण लोक और समस्त भोगोंको प्राप्त कर लेता है—इस श्रीमान्के वाक्यको शिष्टजन बतलाते हैं। उसी आत्माको जाननेकी इच्छा करते हुए हम यहाँ रहे हैं'॥ १—३॥

उनसे प्रजापतिने कहा—'यह जो पुरुष नेत्रोंमें दिखायी देता है, यह आत्मा है, यह अमृत है, यह अभय है, यह ब्रह्म है।' [तब उन्होंने पूछा—] 'भगवन्! यह जो जलमें सब ओर प्रतीत होता है और जो दर्पणमें दिखायी देता है, उनमें आत्मा कौन-सा है?' इसपर प्रजापतिने कहा—'मैंने जिस नेत्रान्तर्गत पुरुषका वर्णन किया है, वही इन सबमें सब ओर प्रतीत होता है'॥ ४॥

अष्टम खण्ड

विरोचनका भ्रमपूर्ण सिद्धान्त लेकर लौट जाना

'जलपूर्ण शकोरेमें अपनेको देखकर तुम आत्माके विषयमें जो न जान सको वह मुझे बतलाओ' ऐसा [प्रजापतिने कहा।] उन्होंने जलके शकोरेमें देखा। उनसे प्रजापतिने कहा—'तुम क्या देखते हो?' उन्होंने कहा—'भगवन्! हम अपने इस समस्त आत्माको लोम और नखपर्यन्त ज्यों-का-त्यों देखते हैं।' उन दोनोंसे प्रजापतिने कहा—'तुम अच्छी तरह अलङ्कृत होकर, सुन्दर वस्त्र पहनकर और परिष्कृत होकर जलके शकोरेमें देखो।' तब उन्होंने अच्छी तरह अलङ्कृत हो, सुन्दर वस्त्र धारणकर और परिष्कृत होकर जलके शकोरेमें देखा। उनसे प्रजापतिने पूछा, 'तुम क्या देखते हो?' उन दोनोंने कहा—'भगवन्! जिस प्रकार हम दोनों उत्तम प्रकारसे अलङ्कृत, सुन्दर वस्त्र धारण किये और परिष्कृत हैं, उसी प्रकार हे भगवन्! ये दोनों भी उत्तम प्रकारसे अलङ्कृत, सुन्दर वस्त्रधारी और परिष्कृत हैं।' तब प्रजापतिने कहा—'यह आत्मा है, यह अमृत और अभय है और यही ब्रह्म है।' तब वे दोनों शान्तचित्तसे चले गये॥ १—३॥

प्रजापतिने उन्हें [दूर गया] देखकर कहा—'ये दोनों आत्माको उपलब्ध किये बिना—उसका साक्षात्कार किये बिना ही जा रहे हैं; देवता हों या असुर—जो कोई ऐसे निश्चयवाले होंगे, उन्हींका पराभव होगा।' वह जो विरोचन था, शान्तचित्तसे असुरोंके पास पहुँचा और उनको यह आत्मविद्या सुनायी—'इस लोकमें यह आत्मा (शरीर) ही पूजनीय है और शरीर ही सेवनीय है। शरीरकी ही पूजा और परिचर्या करनेवाला पुरुष इस लोक और परलोक दोनों लोकोंको प्राप्त कर लेता है।' इसीसे इस लोकमें जो दान न देनेवाला, श्रद्धा न करनेवाला और यजन न करनेवाला पुरुष होता है, उसे शिष्टजन 'अरे! यह तो आसुर (आसुरीस्वभाववाला) ही है' ऐसा कहते हैं। यह उपनिषद् असुरोंकी ही है। वे ही मृतक पुरुषके शरीरको भिक्षा [गन्ध-पुष्प-अन्नादि], वस्त्र और अलङ्कारसे सुसज्जित करते हैं और इसके द्वारा हम परलोक प्राप्त करेंगे—ऐसा मानते हैं॥ ४-५॥

नवम खण्ड

इन्द्रका प्रजापतिके पास पुनः आगमन और प्रश्न

किंतु इन्द्रको देवताओंके पास बिना पहुँचे ही यह भय दिखायी दिया। जिस प्रकार इस शरीरके अच्छी प्रकार अलङ्कृत होनेपर यह (छायात्मा) अच्छी तरह अलङ्कृत होता है, सुन्दर वस्त्रधारी होनेपर सुन्दर वस्त्रधारी होता है और परिष्कृत होनेपर परिष्कृत होता है, उसी प्रकार इसके अन्धे होनेपर अन्धा हो जाता है, स्त्राम होनेपर स्त्राम हो जाता है और खण्डित होनेपर खण्डित हो जाता है तथा इस शरीरका नाश होनेपर यह भी नष्ट हो जाता है। 'इस [छायात्मदर्शन]-में मैं कोई भोग्य नहीं देखता।' इसलिये इन्द्र समित्पाणि होकर फिर प्रजापतिके पास आये। उनसे प्रजापतिने कहा—'इन्द्र! तुम तो विरोचनके साथ शान्तचित्त होकर गये थे, अब किस इच्छासे पुनः आये हो?' उन्होंने कहा—'भगवन्! जिस प्रकार यह (छायात्मा) इस शरीरके अच्छी तरह अलङ्कृत होनेपर अच्छी तरह अलङ्कृत होता है, सुन्दर वस्त्रधारी होनेपर सुन्दर वस्त्रधारी होता है और परिष्कृत होनेपर परिष्कृत हो जाता है, उसी प्रकार इसके अन्धे होनेपर अन्धा, स्त्राम होनेपर स्त्राम और खण्डित होनेपर खण्डित भी हो जाता है तथा इस शरीरका नाश होनेपर यह नष्ट भी हो जाता है, मुझे इसमें कोई फल दिखायी नहीं देता'॥ १-२॥

'हे इन्द्र! यह बात ऐसी ही है' ऐसा प्रजापतिने कहा—'मैं तुम्हारे प्रति इसकी पुनः व्याख्या करूँगा। अब तुम बत्तीस वर्ष यहाँ और रहो।' इन्द्रने वहाँ बत्तीस वर्ष और [ब्रह्मचर्यसे] निवास किया। तब प्रजापतिने उनसे कहा॥ ३॥

दशम खण्ड

स्वप्नके दृष्टान्तसे आत्माके स्वरूपका कथन

'जो यह स्वप्नमें पूजित होता हुआ विचरता है, यह आत्मा है' ऐसा प्रजापतिने कहा 'यह अमृत है, अभय है और यही ब्रह्म है।' ऐसा सुनकर वे (इन्द्र) शान्तहृदयसे चले गये। किंतु देवताओंके पास बिना पहुँचे ही उन्हें यह भय दिखायी दिया 'यद्यपि यह शरीर अन्धा होता है तो भी वह (स्वप्नशरीर) अनन्ध होता है और यदि यह स्त्राम होता है तो भी वह अस्त्राम होता है। इस प्रकार यह इसके दोषसे दूषित नहीं होता। यह इस देहके वधसे नष्ट भी नहीं होता और न इसकी रुग्णतासे रुग्ण होता है। किंतु इसे मानो कोई मारता हो, कोई ताडित करता हो, यह मानो अप्रियका अनुभव करता हो और रुदन करता हो—ऐसा हो जाता है; अतः इसमें (इस प्रकारके आत्मदर्शनमें) मैं कोई फल नहीं देखता'॥ १-२॥

[अतः] वे समित्पाणि होकर फिर [प्रजापतिके पास] आये। उनसे प्रजापतिने कहा—'इन्द्र! तुम तो शान्तचित्त होकर गये थे, अब किस इच्छासे पुनः आये हो?' उन्होंने कहा—'भगवन्! यद्यपि यह शरीर अन्धा होता है तो भी वह (स्वप्नशरीर) अनन्ध रहता है और यह रुग्ण होता है तो भी वह नीरोग रहता है; इस प्रकार वह इसके दोषसे दूषित नहीं होता। न इसके वधसे उसका वध होता है और न इसकी रुग्णतासे वह रुग्ण होता है; किंतु उसे मानो कोई मारते हों, कोई ताडित करते हों और [उसके कारण] मानो वह अप्रियका अनुभव करता हो और रुदन करता हो—[ऐसा अनुभव होनेके कारण] इसमें मैं कोई फल नहीं देखता।' तब प्रजापतिने कहा—'इन्द्र! यह बात ऐसी ही है, मैं तुम्हारे इस (आत्मतत्त्व)-की पुनः व्याख्या करूँगा, तुम बत्तीस वर्ष और ब्रह्मचर्यवास करो।' इन्द्रने वहाँ बत्तीस वर्ष और निवास किया; तब उनसे प्रजापतिने कहा—॥ ३-४॥

एकादश खण्ड

इन्द्र एक सौ एक वर्षके ब्रह्मचर्यके बाद उपदेशके अधिकारी हुए

'जिस अवस्थामें यह सोया हुआ दर्शनवृत्तिसे रहित और सम्यक्‌रूपसे आनन्दित हो स्वप्नका अनुभव नहीं करता, वह आत्मा है'—ऐसा प्रजापतिने कहा 'यह अमृत है, यह अभय है और यही ब्रह्म है।' यह सुनकर इन्द्र शान्तचित्तसे चले गये; किंतु देवताओंके पास पहुँचे बिना ही उन्हें यह भय दिखायी दिया—''उस अवस्थामें तो इसे निश्चय ही यह भी ज्ञान नहीं होता कि 'यह मैं हूँ' और न यह इन अन्य भूतोंको ही जानता है; उस समय तो यह मानो विनाशको प्राप्त हो जाता है। इसमें मुझे इष्टफल दिखायी नहीं देता'' वे समित्पाणि होकर पुनः प्रजापतिके पास आये। उनसे प्रजापतिने कहा—'इन्द्र! तुम तो शान्तचित्तसे गये थे, अब किस इच्छासे तुम्हारा पुनः आगमन हुआ है।' इन्द्रने कहा—'भगवन्! इस अवस्थामें तो निश्चय ही इसे यह भी ज्ञान नहीं होता कि 'यह मैं हूँ' और न यह इन अन्य भूतोंको ही जानता है, यह मानो विनाशको प्राप्त हो जाता है। इसमें मुझे इष्टफल दिखायी नहीं देता।' 'हे इन्द्र! यह बात ऐसी ही है'—ऐसा प्रजापतिने कहा 'मैं तुम्हारे प्रति इसकी पुनः व्याख्या करूँगा। आत्मा इससे भिन्न नहीं है। अभी पाँच वर्ष और ब्रह्मचर्यवास करो।' उन्होंने पाँच वर्ष और वहीं निवास किया। ये सब मिलाकर एक सौ एक वर्ष हो गये। इसीसे ऐसा कहते हैं कि इन्द्रने प्रजापतिके यहाँ एक सौ एक वर्ष ब्रह्मचर्यवास [करके अधिकार प्राप्त] किया। तब उनसे प्रजापतिने कहा— ॥ १-३ ॥

द्वादश खण्ड

इन्द्रके प्रति प्रजापतिका उपदेश

'इन्द्र! यह शरीर मरणशील ही है; यह मृत्युसे ग्रस्त है। यह इस अमृत, अशरीरी आत्माका अधिष्ठान है। सशरीर आत्मा निश्चय ही प्रिय और अप्रियसे ग्रस्त है। सशरीर रहते हुए इसके प्रिय-अप्रियका नाश नहीं हो सकता और अशरीर होनेपर इसे प्रिय और अप्रिय स्पर्श नहीं कर सकते। वायु अशरीर है; अभ्र, विद्युत् और मेघध्वनि—ये सब अशरीर हैं। जिस प्रकार ये सब उस आकाशसे उत्पन्न होकर सूर्यकी परमज्योतिको प्राप्त हो अपने स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं, उसी प्रकार यह सम्प्रसाद इस शरीरसे समुत्थान कर परम ज्योतिको प्राप्त हो अपने स्वरूपमें स्थित हो जाता है। वह उत्तम पुरुष है। उस अवस्थामें वह हँसता, क्रीडा करता और स्त्री, यान अथवा ज्ञातिजनके साथ रमण करता है और अपने साथ उत्पन्न हुए इस शरीरको स्मरण न करता हुआ सब ओर विचरता है। जिस प्रकार घोड़ा या बैल गाड़ीमें जुता रहता है, उसी प्रकार यह प्राण इस शरीरमें जुता हुआ है ॥ १—३ ॥

जिसमें यह चक्षुद्वारा उपलक्षित आकाश अनुगत है वह चाक्षुष पुरुष है; उसके रूप-ग्रहणके लिये नेत्रेन्द्रिय है। जो ऐसा अनुभव करता है कि मैं इसे सूँघूँ, वह आत्मा है; उसके गन्धग्रहणके लिये नासिका है। जो ऐसा समझता है कि मैं यह शब्द बोलूँ, वही आत्मा है; उसके शब्दोच्चारणके लिये वागिन्द्रिय है। जो ऐसा जानता है कि मैं यह श्रवण करूँ, वह भी आत्मा है, उसके श्रवण करनेके लिये श्रोत्रेन्द्रिय है और जो यह जानता है कि मैं मनन करूँ, वह आत्मा है। मन उसका दिव्य नेत्र है; वह यह आत्मा इस दिव्य चक्षुके द्वारा भोगोंको देखता हुआ रमण करता है ॥ ४-५ ॥

जो ये भोग इस ब्रह्मलोकमें हैं उन्हें यह देखता हुआ रमण करता है। इस आत्माकी देवगण उपासना करते हैं। इसीसे उन्हें सम्पूर्ण लोक और समस्त भोग प्राप्त हैं। जो उस आत्माको शास्त्र और आचार्यके उपदेशानुसार जानकर साक्षात् रूपसे अनुभव करता है, वह सम्पूर्ण लोक और समस्त भोगोंको प्राप्त कर लेता है। ऐसा प्रजापतिने कहा, प्रजापतिने कहा ॥ ६ ॥

त्रयोदश खण्ड

श्याम ब्रह्मसे शबल ब्रह्मकी प्राप्तिका उपदेश

मैं श्याम (हृदयस्थ) ब्रह्मसे शबल ब्रह्मको प्राप्त होऊँ और शबलसे श्यामको प्राप्त होऊँ। अश्व जिस प्रकार रोएँ झाड़कर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार मैं पापोंको झाड़कर तथा राहुके मुखसे निकले हुए चन्द्रमाके समान शरीरको त्यागकर कृतकृत्य हो अकृत (नित्य) ब्रह्मलोकको प्राप्त होता हूँ, ब्रह्मलोकको प्राप्त होता हूँ॥ १ ॥

चतुर्दश खण्ड

आकाश नामक ब्रह्मका उपदेश

आकाश नामसे प्रसिद्ध आत्मा नाम और रूपका निर्वाह करनेवाला है। वे (नाम और रूप) जिसके अन्तर्गत हैं, वह ब्रह्म है, वह अमृत है, वही आत्मा है। मैं प्रजापतिके सभागृहको प्राप्त होता हूँ; मैं यश:संज्ञक आत्मा हूँ; मैं ब्राह्मणोंके यश, क्षत्रियोंके यश और वैश्योंके यश (यश:स्वरूप आत्मा)-को प्राप्त होना चाहता हूँ। वह मैं यशोंका यश हूँ; मैं बिना दाँतोंके भक्षण करनेवाले रोहितवर्ण पिच्छिल स्त्री-चिह्नको प्राप्त न होऊँ, प्राप्त न होऊँ॥ १ ॥

पञ्चदश खण्ड

आत्मज्ञानकी परम्परा, नियम और उसका फल

इस पूर्वोक्त आत्मज्ञानका ब्रह्माने प्रजापतिके प्रति वर्णन किया, प्रजापतिने मनुसे कहा, मनुने प्रजावर्गको सुनाया। नियमानुसार गुरुके कर्तव्यकर्मोंको समाप्त करता हुआ वेदका अध्ययन करके आचार्यकुलसे लौटकर गृहस्थाश्रममें स्थित होता है, फिर पवित्र स्थानमें स्वाध्याय करता हुआ [पुत्र एवं शिष्यादिको] धार्मिक बनाकर, सम्पूर्ण इन्द्रियोंको अपने अन्त:करणमें स्थापित कर शास्त्रकी आज्ञासे अन्यत्र प्राणियोंकी हिंसा न करता हुआ और आयुकी समाप्तिपर्यन्त इस प्रकार बर्तता हुआ [अन्तमें] वह निश्चय ही ब्रह्म-लोकको प्राप्त होता है और फिर नहीं लौटता, फिर नहीं लौटता॥ १ ॥

॥ अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

॥ सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद् समाप्त ॥

शान्तिपाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि। सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

[इसका अर्थ केनोपनिषद्के आरम्भमें दिया जा चुका है।]